

में ने कहा

लेखक की अन्य रचनाएँ

अमी सुनो ।

पृष्ठ १७४

(हृत्तरा संस्करण)

मूल्य ५० १.००

हिन्दी-साहित्य में व्यासजी की 'हंस्य रसार्कटार' कहा जाता है। हिन्दी कविता में छिपे हास्य की परम्परा के जन्मदाता व्यासजी ही हैं। उनका हास्य पारिवारिक होता है। कवि की पत्नी 'अगो की बीबी' के रूप में मास भारत के घर-घर में प्रसिद्ध है। 'अमी सुनो' में व्यासजी की पुरानी अमी प्रसिद्ध कविताओं का संग्रह है। वे रचानाएँ अराबी से कन्नड़के श्रीर काश्मीर से कम्बोकुमाठी तक जनता के बिसों में घर किए हुए हैं।

कवम-कवम बढ़ाएजा

पृष्ठ १४

(तीक्ष्ण संस्करण)

मूल्य ५० १ १

व्यासजी अर्थम्य विनोद ही नहीं लिखते, उनमें भीर रस लिखने की भी अद्भुत क्षमता है। प्रस्तुत पुस्तक में अोजपूर्ण भाषा में नेताजी सुभाषचन्द्र बोस के स्वतन्त्रता-संग्राम का पद्यबन्धपूर्ण ऐतिहासिक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। हिन्दी में यह भीर रस पूर्व अज्ञ-काल्य अपनी परम्परा में एकदम मौलिक और राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-ओत है।

हमारे राष्ट्रपिता

पृष्ठ १३६

(हृत्तरा संस्करण)

मूल्य ५० २ ०

जो गांधीजी पर जनक पुस्तकें लिखी गई हैं सिर्फ उनके जीवन और राजन को एक ही अग्रह संयोग में आकर्षक कवि-बाणी से व्यक्त करनेवासी यह प्रथम प्रामाणिक पुस्तक है। इस पुस्तक की सचहना सबने मुक्तकण्ठ से की है। आचार्य विनोबा भावे ने स्वयं इसकी मूद्रिका लिखी है और राजवि पुस्तकालयवासी टंडन ने इसके 'श्री अर्थ' लिखे हैं।

गांधी-घरित

पृष्ठ १२

मूल्य ५० ० १०

गांधीजी और श्रीश्री के लिए तरत और रोचक भाषा में मोटे टाइप में गांधीजी की यह प्रामाणिक जीवनी बास-साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है।





नेहरू व्यंग-चित्रकार की दृष्टि में

मैं ने कहा...

शिव्य, सामाजिक एवं बुजुर्गों द्वारा साहित्यिक
और राजनैतिक व्यंग-विमोक्षों से परिपूर्ण
सोमह मौलिक विमोक्षों का सचित्र सङ्ग्रह

कलाकर्म
गान्ध्या
कलाकर्म
गान्ध्या
विमोक्ष
१ विमोक्ष

लेखक

गोपालप्रसाद व्यास

व्यंग-विमोक्ष

श्री ब्रजचर बहुराम

१० प्रतीक
८ प्रतीक



१९५८

धामाराम एन्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विमोक्षा
कारमीठी रोड
दिल्ली-१

१९५८
१५ प्रतीक
१० प्रतीक
१ प्रतीक

प्रकाशक
रामसाह पुषी
संभालक
भारतायम एम्ब संघ
काशीरी रोड
दिल्ली ६

द्वितीय संस्करण १९५८
मूल्य रु० ५.००

मुद्रक
श्रीश्री प्रस
बाबड़ी बाजार
दिल्ली ६

तो, मैंने कहा

मेरा जन्म वहाँ (परासीखी-मधुरा में) हुआ, जहाँ महाकवि महात्मा सूरदास ने हिन्दी का महाकाव्य 'सूरसागर' रचा, मेरी जन्म तिथि (माघ शुक्ला दशमी) भी यह थी, जिस दिन छायावाद के प्रवर्तक महानाटककार प्रसादजी ने जन्म लिया और संवत् १९७२ के ईस्वी सनों में फैसाइए तो ज्ञात होगा कि इतिहास में उस महान वर्ष का कितना महत्त्व है !

मेरी बीबी (माताजी) कहा करती थी कि जब मैं गम में ही था, तब एक महात्मा उनके द्वार पर आए थे और कह गए थे कि तेरा यह पात्रक बड़ा 'प्रतापी' होगा ।

भगवान श्री कृष्ण की तरह जब सात वर्ष का हुआ तो गोवर्द्धन पर्वत की तराहटी छोड़कर मधुरा आ गया ।

पढ़ाई के दिनों तो कुछ जगहों ही पास किये, लेकिन तैरने, कुतली लड़ने, लपटी चढ़ाने, चौपड़ खेलने और बाद में खिच-सबैये पढ़ने में आस पास काफ़ी काम किया । पिताजी की इच्छा के अनुसार कम-से-कम 'मैट्रिक' भी पास न कर सका तो क्या, क्लासिक्स के बड़े-बड़े पाठों जीत किये और रामलीला में लीला, सप्तमय्य और राम के अभिनय कर करके मधुरावासियों से क्यों तक हाथ जुड़वाता रहा, शीरा मुक़्तावा रहा और जय-जयकार करतावा रहा ।

रोजी न रूप महीने की कम्पोज़िटीरी स प्रारम्भ की । मरीनों में स्वाही भी ही और अरब भी लगाया । सत्यनारायण की क्या भी बॉबी, क्लिपों भी बिल्ली और दूरान से लेकर सहायक प्रबंधन भी किये ।

आगरा में जब पागलखाना बंद निकला तो मैं भी वहाँ पहुँचा और वहाँ के मासिक 'साहित्य-सन्देश' से अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया ।

'भारत छोड़ो' आन्दोलन के साथ-साथ मुझे भी आगरा छोड़ना पड़ा । तब कुछ महाने इटाया रहा । इटाया में जमकर गायत्री मंत्र का जाप किया; महाभारत, पारसीकि रामायण और श्रीमद्भागवत के पारायण किये । महाकवि देव की इस नगरी में ही कविता मुझ पर प्रसन्न हुई । हाथरस वही से जमा ।

ये हास्य रस की रचनाएँ ही मुझे 'दिल्ली बहो' आन्दोलन के सामने मैं दिखती हो गईं। इनकी ही सदीतक एक कम्पोजीटर ('घण' ही सही) 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक बना।

पद्य में हास्यरस की कविताएँ सिन्धी के 'अमी सुनो' में संयोजित हैं। गद्य में जो व्यंग्य-विनोद बिला, वह इन पुस्तक के रूप में आपके सामने है।

इस प्रकार, अगर कोई दुर्घटना मही हुई तो लक्ष्य मेरे सब बड़े 'प्रवापी' वजन के ही हैं, आगे मर्जी भगवान की।

बस, इसके सिवाय भूमिका में मुझे और कुछ नहीं कहना। व्यंग्य का परिचय मैंने दे दिया, कृति आपके सामने है।

'हिन्दुस्तान', नई दिल्ली

—गोपालप्रसाद व्यास

* भूतरे संस्करण के सम्बन्ध में

दस साल बाद जब इस संग्रह की रचनाओं को मैंने फिर से पढ़ा तो मुझे इसकी भाषा कहीं-कहीं कुछ बोली-बोली नजर आई। वाक्यों में अनावश्यक शब्द भी दिखाई दिए। कहीं कहीं विचारों में भी कसावट को कमी महसूस हुई। तदनुक सम्पादक की तरफ शौको का निर्देश करते हुए, मैंने भाषा और भाव का यह परिमार्जित इस बार जहाँ-वहाँ कर दिया है।

एक कर्तून भी पढ़ा। बार नये और जोड़े। भाई रवीन्द्र ने मेरा भी एक कर्तून बना बाबा। ये सब इन संस्करण में जोड़ दिए हैं।

इस संग्रह में 'स्वतन्त्र चम्पीदफार' नाम से एक नया निबन्ध और भी जोड़ा है। यह लेख सन् ५१ के प्रथम आम चुनाव के समय लिखा गया था। इस प्रकार ५१ तक के मेरे सभी विमोदपूर्ण निबन्ध इस संग्रह में आ गए हैं।

१८१५ विस्मयक कालोती }
 चारनी चोर दिल्ली }

—गोपालप्रसाद व्यास
 १११५७

क्रम

विषय	पृष्ठ
१ मूठ-बराबर तप मही	१
२. मेरी पत्नी मछी हो है, खेफिन	७
३ 'कन'के साथ बाजार जाना	१५
४ मन्थन नहीं मिथ्या	२३
५ मेहमान से भगवान बचाप	३१
६ नौकर के मारे	३७
७ एक नया पम्पा	४५
८ बस की सवारी	५३
९ दफ्तर की दुनिया	५९
१० हिन्दो के आलोचको	६५
११ सुरामद भी एक कडा है	७१
१२. मलेरिया महापज	८१
१३ मुसीबत है	८७
१४ साहित्य का उद्देश्य	९१
१५ पत्रकार की पहचान	९९
१६ स्वतन्त्र इन्मीरवार	१०७

मूठ बराबर तप नहीं

शास्त्रों में लिखा है कि जब तक ज्ञान ज्ञाने का अंतर न हो, तब तक मूठ नहीं बोलनी चाहिए। अगर नई दुनिया का शास्त्र मुझे बताने को कहा जाय तो उसका पहला वाक्य यह हो— 'जब तभी बोलना चाहिए, जब कि ज्ञान जाती हो।'

मूठ बोलने घोर पकड़े गए तो बिककार है ऐसे बात बिसने पर ! मूठ बोलने का मजा तो यह है, होशियारी तो इसमें है कि मूठ बोलो मगर मूठ न दिखाई दे।

माप मूठ बोलिए घोर फिर बोलिए, लेकिन माई मेरे, ठनिक सख्त के साथ ! इसीको दुनियावारी कहते हैं, इसीमें सफलता छिपी है।"

आपका पता नहीं, मैंने तो अपना यह सिद्धान्त बना रखा है कि—

मूठ बराबर तप नहीं, साथ बराबर पाप ।

जाके हिरवीं मूठ है, ताके हिरवीं पाप ॥

और यकीन मानिए अपने इसी सुनहरे सिद्धान्त की बबोजस दिन-पर दिन गोम हुआ जाता है और नखर न लग जाए किसीकी, बस, सब तरह से पौ-बारह ही हैं ।

मूठ बोलने का बडा मह्वात्म्य है । अगर आप आज के वैज्ञानिक तरीके से मूठ बोलना सीख जायें तो विद्वान्त कीजिए कि फिर जिन्वगी में आपको कभी मायूस रहने की जरूरत नहीं पड़े । घुठ लगाकर कह सकता है कि अन्द दिनों की ही कसरत के बाद आपके पास ठाठदार बैंगसा, धानदार मोटर, बहकता हुआ रेडियो झुकता हुआ घदली यदि खुद न आजाए, तो जसम आपकी में आज से ही मूठ बोलना छोड़ सकता है ।

मूठ कौन नहीं बोलता ? हमारे पविष घास्त्रों में लिखा हुआ है कि यह सारा ससार ही मिथ्या है । मासा-पिता स्त्री, पुन-कलत्र सब रिस्ते मूठे हैं । अग-भ्यवहार सब मिथ्याचार है । दो-बार सन्त फकीर और गांधी-महात्माधों को छोड़ दीजिए, दुनिया में इनका होना-न-होना हम मूठों के प्रपण्ड बहुमत में कोई धरें नहीं रखता । मेरा तो दावा है कि मूठ और सच की बिना पर अगर इस देस में चुनाव सड़ लिए जायें तो हिन्दुस्तान की एक भी सीट पर काँग्रेसियों का धयिकार नहीं रह सकता । हिन्दुस्तान क्या सारी दुनिया में हम मूठों का ही सिस्का घसता है और बहु दिन पूर नहीं अब धरती के एन घोर से सेकर दूसरे तक हर जगह हमारी मजबूत सरकारें कायम हो पायेंगी ।



“यह मेरी बानी 'उल्लेख' है। कृपया ध्यान दें। यह मेरी बानी है। मैं इसे ध्यान में रखकर भी बर्बाद नहीं होने दूँ।” (पृष्ठ १)

वर घसस, दुनिया में घोर है भी क्या ? खाने को तीन छटाँक गेहूँ पहनने को तीन मज कपड़ा घोर बोलने को जी-भर मूठ ! राक्षस घोर कष्टोत् के इस पिछले जमाने में अगर कहीं मूठ भी भोरबाजार में खसी गई होती तो मूठ न मानिए, दुनिया से ११ प्रतिशत घावमी उठ गए होते ।

दुनिया का दस्तूर ही ऐसा है कि बिना मूठ के घापकी माड़ी भागे बढ़ ही नहीं सकती । जिस तरह चटनी के बिना भोजन में स्वाद नहीं आता, रूप के बिना यौवन किरकिरा होता है, इस्क के बिना शायरी फ्रीकी लगती है उसी तरह बिना मूठ के भी जिन्दगी कोई जिन्दगी है ?

शास्त्रों में सिखा है कि जब तक जान का खतरा न हो तब तक मूठ नहीं खोसनी चाहिए । अगर नई दुनिया का शास्त्र मुझे बनाने को कहा जाए तो उसका पहला वाक्य यह हो—“सब सभी खोसना चाहिए, जब कि जान जाती हो ।”

मह बिमकुस मूठ बाघ है कि पहले जमाने में मूठ खोसने वाले मर जाया करते थे । कम-बढ़ में १५ साल का हो गया है तब से हजारों क्या, लाखों बार मूठ खोलने का सीमाम्म प्राप्त हुआ होगा, पर क्या मन्नास, मरें तो मेरे घुस्मन, महीं तो सर में दर्द तक नहीं हुआ ! सिद्ध घापसे कहता है कि बाहर की तो क्या खसो, घर में, घामी 'उम'से, मतलब अपने लड़के की जन्मदातु से तो शायद घुस कर भी कभी उब नहीं खोसता, लेकिन इस पर भी दावा यह है कि घाब तक किसीने मुझे खरेघाम मूठा खताने का हौसला नहीं किया ।

मूठ खोले और पकड़े गए तो धिक्कार है ऐसे बात घिसने पर ! मूठ खोलने का मन्ना तो यह है, होशियारी वा इसमें है कि मूठ खोलो, मगर मूठ न दिखलाई दे ।

घाप मूठ खोलिए और फिर खोलिए, लेकिन भाई मेरे, तनिक सफ़ाई के घाय ! इसीको दुनियावारी कहते हैं इसीमें सफ़लता धिपी है ।

भूठ बोलना भी एक कला है—एक महान घाट ! इसकी महा गता के प्रागे चित्रकारी के रंग फीके हैं, संगीत का स्वर बेसुरा है और कविता के छन्द निरर्थक हैं ।

भोग कहते हैं कि जिसने सत्य को पा लिया उसने परमेश्वर को पा लिया । एकदम गमत । बात सही यह है कि जिसने भूठ को पा लिया उसे कुछ और पाना खेप ही नहीं रहा ।

भूठ परम तत्व है । यह अमरामर है । सनातन है । निर्बिकल्प है । सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है । यद्यपि यह भेदामेव से परे है फिर भी अभ्यास या साधना के लिए मैंने इसके कुछ भेद किये हैं जैसे— (१) शूद्र भूठ (२) अशूद्र भूठ (३) सफेद भूठ (४) बे-छिर-पैर की, (५) मनगढ़स्त (६) गप्प और (७) भारखीबीसी । वेसकास अवस्था और समय-संयोग के अनुसार इनके फिर संकड़ों प्रकार होते हैं । स्पान-सकोच से उनका बणन यहाँ नहीं किया जा सकता । फिर इस विषय पर हिन्दुस्तान के ३३ करोड़ बेबी-देवता भर-भर में नित्य नये अनुसंधान कर रहे हैं, इसलिये धमी से इस शास्त्र को सिपि बढ करना ठीक नहीं । ऐसा करना इसकी बढ़ती को रोक देना है ।

मेरा मत है कि आबकल बिना भूठ के यह धरीर रूपी गाड़ी जीवन रूपो दलदल को पार नहीं कर सकती । उदाहरण चाहिए ? ता मान सीजिए कि आप किसी दफतर में वासू हैं । बाहू भी ऐसे कि नेकनीयती के सङ्गत में फाइलों पर भुक्तो-भुक्तो आपकी गर्दन लम का भई है । लेकिन आपको चाहिए चार दिन की छुट्टी । निहा मत जरूरी काम था पड़ा है । काम भी ऐसा नहीं कि जिसे टासा जा सके । आपकी पत्नी के भाई के सड़के को पुकाम हुआ है । वह बचारा हरदम छींकता रहता है । आपकी 'उन'के भाई-भाबज सब परेधान हैं । उनके मँके स घाने वाले छत अकसर छींकों से भरे रहते हैं । पत्नी का कहना है कि इस हासत में अगर 'हम' बच्चे को बेचने नहीं गए तो रिस्तेदारी में नाक कट जाएगी ।

धायमी को अपनी नाक का खयाल नहीं तो वह धायमी नहीं !

लेकिन प्रावमियत के इस सच्चे मामले को आप अपनी धर्जी में मिस कर वडे वाबू को भज ता देखिए ? सत्य बोलने का आज्ञाम माधार हो सकता है अगर धर्जी इस जन्म में तो क्या भगले सात जन्मों में भी मन्थूर होकर घाब्राए ।

एसी जगह पर आपको फुन खेसना ही पड़गा । जसा कि अक्सर मैं और मेरे साथी वाबू किया करते हैं पड़ौसी डाक्टर की जेब में दो रुपए का एक बिना दस्तखती नोट चुपके से डालत हुए कहा जाए— 'डियर डाक्टर, एक सार्टीफिकेट लो बना दो । डाक्टर भी इस फन में कम होशियार न निकलेगा । वह लिखेगा ऐसा मामूम होता है कि वाबू को जोर से सर्जरी का 'घटके' हुआ है । दोनों फेफड़े मरे हैं । परहेज इलाज और एक सप्ताह के आराम की सलत जरूरत है ।

सीजिए आपने मैदान मार लिया । दुधन्नी किसी लठके को देकर धर्जी को दफतर रवाना कीजिए और आप समुराम का टिकट कटाइए । अगर समुराम का पानी भग जाय और 'ध्वसुर-गुह निवास' स्वर्ग-तुल्य नृणामाम् उक्ति सही साबित हो लो दो रुपए डाक्टर के नाम और सही । फिर भगाइए एक और सप्ताह का गोता । कोई पनहुब्बी भी आपको नहीं खोज सकती और कोई अक्स का कच्चा यानी सच्चा इस महान् सच को भूठ नहीं सिद्ध कर सकता ।

मेरे अपने साथ घटी एक घटना सीजिए । पिछले जून के महीने में जब मैं वर्णों के साथ घर से बापस दिल्ली सौट रहा था तो मुझे भा प्यादा किसी होशियार मे मेरी जेब से मनीबैग साफ कर दिया । टिकट रुपए सब-कुछ उसीमें थे । मई दिल्ली स्टेशन पर उतरा तो होश फ्रास्ता ! कुसी सामान सकर गेट की धोर चल रहा था बीबी-बच्चे दिल्ली सौट आने से लुप्त थे पर मेरी प्रोगुमियाँ जेबों को कुरेव रही थीं और बेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं कि हाय राम भव क्या होमा ?

दो-तीन मिनट इसी सम में डूबा रहा कि टिकट का चार्ज लो

मूठ बोलना भी एक कला है—एक महाम घाटं ! इसकी महा नता के भागे चित्रकारी के रंग फ्रीके हैं, संगीत का स्वर बेसुरा है और कविता के छन्द निरर्थक हैं ।

भोग कहते हैं कि जिसने सत्य को पा लिया उसने परमेश्वर को पा लिया । एकदम गसत । बात सही यह है कि जिसने मूठ को पा लिया उसे कुछ और पाना खोप ही नहीं रहा !

मूठ परम तत्व है । यह अजरामर है । सनातन है । निर्विकल्प है । सम्पूर्ण अणु में व्याप्त है । यद्यपि यह मेदामेद से परे है फिर भी अस्मास या साधना के लिए मैंने इसके कुछ भेद किये हैं, जैसे— (१) शुद्ध मूठ (२) अशुद्ध मूठ (३) सफेद मूठ, (४) बे-सिर-वीर की, (५) मनगढ़न्त, (६) गप्प और (७) आरखीबीसी । वेदकाल अवस्था और समय-संयोग के अनुसार इनके फिर संकड़ों प्रकार होते हैं । स्वान-संकोच से उनका वर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता । फिर इस विषय पर हिन्दुस्तान के ३३ करोड़ बेबी-देवता घर-घर में मिले नये अनुसंधान कर रहे हैं, इसलिए अभी से इस शास्त्र को लिपि बद्ध करना ठीक नहीं । ऐसा करना इसकी बढ़ती को रोक देना है ।

मेरा मत है कि आखरस बिना मूठ के यह शरीर रूपी गाड़ी जीवन रूपो बमदस को पार नहीं कर सकती । उदाहरण चाहिए ? छो मास लीबिए कि आप किसी दफ्तर में बाबू हैं । बाबू भी ऐसे कि मेकनीयती के सङ्घ में फाइला पर मुक़्ते-भुक़्ते आपकी पर्वन खम सा गई है । लेकिन आपको चाहिए चार दिन की छुट्टी । निहा यत जरूरी काम था पड़ा है । काम भी ऐसा नहीं कि जिस टासा जा सके । आपकी पत्नी के माई के सङ्के को जुकाम हुआ है । वह बेचारा हरदम छींकता रहता है । आपकी 'उन'के माई भावज सब परेदान हैं । उनके भंके स घाने वाले खत अक्सर छींकों से भरे रहते हैं । पत्नी का कहना है कि इस हालत में अगर 'हम' बच्चे को देखने नहीं गए तो रिपतेवारी में पाक कट जाएगी ।

आदमी को अपनी नाब का ख्याल नहीं तो वह आदमी नहीं ।

लेकिन आदमियत के इस सच्चे मामले को आप अपनी धर्ती में लिख कर बड़े बाबू को मज ता देखिए ? सत्य बोलने को आजम्ब साधार हो सकता है अगर धर्ती इस जग में तो क्या भगले सात जर्मों में भी मन्थूर हाकर आनाए ।

एसी जगह पर आपको फ्रन खेलना ही पड़गा । जसा कि प्रकसर में धीर मेरे साथी बाबू किया करते हैं पढ़ीसी डाक्टर की बेब में वो स्पए का एक विना दस्तकती नाट धुपके से डामस हुए कड़ा जाए— डियर डाक्टर, एक सार्टीफिकेट तो बना दो । डाक्टर भी इस फन में कम होशियार न निकलेगा । वह सिन्धेगा एसा मामूम हाता है कि बाबू को जोर से सर्ती का घटक' हुमा है । दोनों फेफड़े भरे हैं । परदेज इसाज धीर एक सप्ताह के आराम की सक्त जरूरत है ।

सीजिए आपने मैदान मार लिया । दुपन्नी किसी लडके को देकर धर्ती को दफतर खाना कीजिए धीर आप ससुरास का टिकट कटाइए । अगर ससुरास का पानी सप आप धीर 'द्वसुर-गूह लिपास स्वयं-मुस्य गुणानाम्' उक्ति सही साबित हो ता वा स्पए डाक्टर क नाम धीर सही । फिर भगाए एक धीर सप्ताह का गोठा । कोई फनहुब्बी भी आपको नहीं खोज सक्ती धीर कोई प्रकस का कच्चा मानी सच्चा इस महाम् सप को भूठ नहीं सिद्ध कर सकता ।

मेरे अपने साथ घटी एक घटना सीजिए । निस्सुन जून के महीने में जब मैं बच्चों के साथ घर से बापस दिस्ती सौट रहा था तो मुम्मे भी ज्यादा किसी होशियार ने मेरी बैब से मनीबेस साफ कर दिया । टिकट स्पए सब-मुछ उसीमें से । नई दिस्ती स्टेशन पर उतरा तो होश कास्ता ! कुन्नी सामान निकर नेट धी धीर बस रहा था बीबी-बच्चे दिस्ती सौट आने से मुम से पर मेरी प्रंगुनियाँ बैबों को कुरेव रही थीं धीर बिहारे पर ह्वासा ज रही थीं कि हाय राम भब क्या होगा ?

दो-तीन मिनट इसी घम में हुआ था कि

मूठ बोलना भी एक कला है—एक महान घाटं । इसकी महानता के भागे चित्रकारी के रंग फ्रीके हैं, संगीत का स्वर बेसुरा है और नबिता के छन्द निरर्थक हैं ।

लोग कहते हैं कि जिसने सत्य को पा लिया उसने परमेश्वर को पा लिया । एकदम यमस । बात सही यह है कि जिसने मूठ को पा लिया उसे कुछ और पामा खेप ही नहीं रहा ।

मूठ परम सत्य है । यह अजरामर है । समातन है । निबिकल्प है । सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है । यद्यपि यह मेदागेव से परे है, फिर भी अभ्यास या साधना के लिए मैंने इसके कुछ मेद किम्बे हैं जैसे— (१) शुद्ध मूठ, (२) अशुद्ध मूठ, (३) सफेद मूठ (४) बे-सिर-पैर की, (५) मनगढ़न्त, (६) गप्प और (७) चारसौवीसी । देशवास प्रबस्था और समय-सयोग के अनुसार इनके फिर सैकड़ों प्रकार होते हैं । स्वाम-सकोष से उनका बर्णन यहाँ नहीं किया जा सकता । फिर इस विषय पर हिन्दुस्तान के ३३ करोड़ देवी-देवता घर-भर में नित्य नये अनुसंधान कर रहे हैं, इसलिए धमी से इस शास्त्र को सिपि बढ करना ठीक नहीं । ऐसा करना इसकी बढ़ती को रोक देना है ।

मेरा मत है कि आजकल बिना मूठ के यह धरीर रूपी गाड़ी जीवन रूपी दलदल को पार नहीं कर सकती । उदाहरण चाहिए ? तो मान सीजिए कि आप किसी वफ़तर में बाढ़ हैं । बाढ़ भी ऐसे कि नेकनीयती क सद्गत में फाइसों पर झुकते-झुकते आपकी गर्दन छम सा गई है । लेकिन आपको चाहिए चार दिन की छुट्टी । निहायत जरूरी काम या पडा है । काम भी ऐसा नहीं कि जिसे टासा जा सके । आपकी पत्नी के भाई के लड़के को भुकाम हुआ है । वह बेचारा हरदम छीकता रहता है । आपकी 'उनके भाई-भाबज सब परेघान हैं । उनके मैंके स धाने वाले छत धक्कर छीकें से भरे रहते हैं । पत्नी का कहना है कि इस हासत में धगर 'हम' यच्चे को देखने नहीं गए तो रिस्तेवारी में माक कट जाएगी ।

भादमी को अपनी नाक का ख्यास नहीं तो वह धाम्मी नहीं !

लेकिन आदमियत के इस मुद्दे मसले को आप अपनी धर्ती में निपट कर बड़े बाबू को भय तो नशिय ? सख्य झोपने का आजम लाचार हो सकता है अगर धर्ती इस जन्म में तो क्या अगल सात जन्मों में भी मन्वूर होकर आनाए ।

ऐसी जगह पर आपको फ़न खेतना हो पड़ेगा । जसा कि अक्सर मैं और मेरे साथी बाबू किया करते हैं पड़ोसी डाक्टर की जेब में दो रुपए का एक बिना दम्बखती मोट चुपके से डालत हुए कहा जाए— 'डिपर डाक्टर, एक सर्टीफ़िकेट तो बना दो । डाक्टर भी इस फ़न में कम हाशियार न निकसेगा । वह सिखेगा 'ऐसा मामूम होता है कि बाबू को जोर से सर्वा का अटके' हुआ है । दोनों फ़न्डे मरे हैं । परहेज, इलाज और एक सप्ताह के आराम की सस्त बख़रत है ।

सीजिए आपने मैदान मार लिया । दुधन्नी किसी लडके को लेकर धर्ती को दफ़्तर खाना कीजिए और आप ससुराल का टिकट कटाइए । अमर ससुराल का पानी सग बाय और 'स्वसुर-गृह निवास' स्वर्ग-सुख नृणानाम्' उक्ति सही साबित हो तो दो रुपए डाक्टर के नाम और सही । फिर सगाइए एक और सप्ताह का गोठा । कोई पमहुदवी भी आपको नहीं खोज सकती और कोई अक्स का कच्चा यानी सज्जा इस महान् सख को भूठ नहीं सिद्ध कर सकता ।

मेरे अपने साथ धटी एक बटमा भीजिए । पिछले जून के महीने में जब मैं बच्चों के साथ घर से बापस दिस्ली सौट रहा था तो मुझसे भी ज्यादा किसी हीशियार ने मेरी जेब से मनीबैग साफ कर दिया । टिकट खए सब-भूछ उसीमें थे । नई दिस्ली स्टेशन पर उतरा तो होश फ़ास्ता ! कुसी सामान लेकर गेट की ओर चला रहा था शीवी-बन्ने दिस्ली सौट आने से कुछ दे पर मेरी धैरुसियाँ जेबों को कुरेव रही थी और बेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थी कि हाय राम घब क्या होया ?

दो-तीन मिनट इसी एम में हुआ रहा कि टिकट का चार्ज तो

दूर इस कुसी को भी धाखिर क्या दिया जायगा ? लेकिन जिन्दगा भर जिस मूठ को गले रागाया था धाखिर उसने उधार ही तो लिया ! मैं मागे-मागे हो लिया । गेट पर आकर टिकट कलक्टर को सुनाते हुए धीमतीजी से या-भवय कहा 'भाइए, इधर से भाइए ! क्यों भाईसाहब साथ में नहीं आए ? मुझे तार तो तुम्हारा मिल गया था, रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई !

धीमतीजी यह रग-उंग देख कर पहले जरा धजकचाई तो लेकिन धाखिरकार मुझ प्रमाणित असत्य भापी की 'भर्मपत्नी' थीं ! फौरन सेमलकर मुझसे भी सचाई होकर बानी 'उनके कोर्ट में जरूरी मुकदमा था । बहने सगे—तार तो दे दिया है । स्टेशन पर जीजाजी था ही आएंगे, बनी आघो ! पर गाड़ी में आमकन बनी भीड़ रहती है । संकिण्ड बसास में भी आदमी का सुरसा बन जाता है !

टिकट कलक्टर बेधारा रीब में आगया । उसने समझ किसी जज की बहन हैं और मुझ कांपसी एम० पी० को ब्याही हैं । टिकट मांगना तो दूर, वह धदय से एक तरफ झड़ा हो गया ! जान बधी और सालों पाए !

मरा ख्यास है कि धगर में सचाई से काम लेता तो कहीं का न रहता । यह मूठ बोलने का ही प्रताप था कि धान बध गई । इसीलिए तो कहता हूँ कि मूठ बरखर तप नहीं ।

मेरी पत्नी मली तो हैं, लेकिन

“ वे सालों से मसी हे मेक हैं दुसरिन ह
 पीर उदार घायल बासी भी हैं, लेकिन तमी तक जब
 एक कि मैं उनकी समझ के बाधरे के धन्वर घिना कान
 पूँछ दिखाए चलना जाता हूँ। अगर कही उनकी खींची
 हुई मझमझ-रेखा (नहीं-गहीं पत्नी-रेखा) का प्रति
 क्रमण करके मैं अपने 'पत्नीव्रत धर्म' से बच भी बिगने
 मयता हूँ तो समझ लीजिए कि मेरी भी पुल्लेनी रियासत
 पर सरदार पटल की मजूर पड़ी ! धन पड़ी !!”

किसी और की बात मैं नहीं जानता लेकिन मैं तो सचमुच अपनी पत्नी का अत्यस्त कृतज्ञ हूँ। यों बम मुझे अपनी मा से मिमा, पावन-योपण और सम्कार भी शायद उन्हींसे प्राप्त हुए होंगे पर इस बात को आज सबके सामने स्वीकार करने में मुझे बरा भी हिचक नहीं होती कि जहाँ तक मेरे आदर्श बनने का प्रश्न है, वह मुझे मेरी 'बहूमाता' ने ही बनाया है। मैं उन्हीं का (बनाया) 'भावमी' हूँ।

'बे' न होती तो मैं आज कहीं का होता? आज उन्हींकी कृपा से मैं एक सम्बन्ध बौद्ध बुद्धत्व का बीजा और फैले-पूरे घने-बसे हुए एक सुहृस्ते-भर को सासा बनाने योग्य हुआ हूँ। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि अगर मेरे पूज्य पिताजी ने मेरी शादी न करने का फैसला बिना मुझसे पूछे ही कर लिया होता तो कबि सेवक और पत्रकार बनना तो बुर, मैं तो स्वयं अपने बच्चों का पिता भी बनने से रह जाता! यह सब-कुछ उन्हींका प्रसाद है कि समाज में आज मेरे लिए भी पैर रखने को जगह है। साक्षात्तो में कभी-कभी मुझे भी सम्य समझ लिया जाता है और सबसे बड़ी बात यह कि दिल्ली में रहने को एक टीन भी किसी इन्वर किराए पर मिली हुई है।

क्या बात कहूँ मैं उनकी? भगवान् हजारी उम्र करे, 'बे' मजमुज इतनी मनी हूँ कि जबसे हुजूर ने हमारे घर को रौमक-अफ़रोज फरमाया है, हमें तो सिर्फ़ आराम के करने की कुछ काम ही नहीं रह गया। भड़ा-बुहारा घर, धुले-धुसाए कपड़े, पका-पकाया खाना मिछी-बिछाई घाट और बिना माँगे पानी—जब आदर्श को अनायास ही मिसने लगे तो उसे महाकवि पाण के शब्दों में "उहाँ छाँडि इँहिब बैकुष्ठा" नजर आने लगता है। हमारी क्लीम-खेब सूरत सबी-सबारी देह और उमीक्रे के कपड़ों को देखकर मित्र लोग हरान

होते हैं कि इस 'वधिया के ठाऊ' में इतनी प्रकृत कहीं से आ गई ? मगर उन्हें यह नहीं मानूम कि यह तो किसी और का ही वरद हस्त है जिसने हमारे ऊपर गिरने वाले गिरि गोबद्ध न को यों प्रथम ही में धाम रखा है ।

उनके धी-वरणों का सुम्पस पाकर, सब बड़े इस घर को दुनिया ही बदल गई है । घर के बलम, कपड़े, फर्नीचर चित्र, चित्राबें—यह समझिए कि पूरे-से सगने वाले इस घर का सारे-का-सारा वातावरण ऐसे दमक उठा है, मानो मुँह से बात करने सगा हो ! जब हमें न तो रूमास की खातिर सारी असमारी उसट देनी पड़ती है और न कविता के कागजों की तलाश में टाक से लेकर झूबे के कनस्तर तक की दौड़ ही सगानी होती है । हर एक चीज कायदे से, अपने समय पर, इस सफाई और सुन्दरता के साथ स्वयं होती चलती है कि हम तो अपनी 'होम गवर्नमेंट' की इस घासन कुशलता पर दग रह जाते हैं । घादी से पहले जब हम इन्हें पसन्द करने गये थे (हामांकि वह हमारी हृद दर्भ की बेवकूफी थी) तब सपने में भी यह खयाल नहीं आया था कि इस सीधी-सावा दुबसी सरहरी गऊ-सी सड़की में इतनी 'एडमिनिस्ट्रेटिव पावर' और ये-ये गुन भरे होंगे !

परन्तु, आप जानत हैं कि प्रादमी अपनी प्रकृति से बेस और कसाकार नाम का प्राणी वास्तव में विसकुल घड़बे के समान होता है । दुर्भाग्य से वह कहीं हिन्दी का कवि भी हो तो बस, संर नहीं । समझे कि करेसा है और नोम बढ़ा ! इस बिना सींग के पशु को, यह समझिए, बचन बरा भी नहीं सुहाते । उसे घेर-घेरकर झूटे की घोर साइए, वह उछल-उछलकर उससे बसे ही दूर भागता है जैसे 'महावीर बिक्रम बजरंगी का नाम सुनते ही सूत भाग उठते हैं । यही हाल कुछ मेरा भी समझ सीजिए । वह घेर-घेर कर जाती है और मैं बिदक-बिदककर भाग सड़ा होता हूँ ।

उन्होंने मेरे घाठ पहर चौसठ पड़ी का एक निदिपत 'टाइम-

टेबुल' बना छोड़ा है कि ९ बजे उठो। और यह भी कोई बात है कि रोज नहाओ इस बूझ प्रलंबार पढ़ो और इस बूझ चाम पियो। खाना ठीक सांके नौ बजे, फिर १५ मिनट का 'रेस्ट' और फिर सीधे बनो अपने काम पर। और देखो दफ्तर से ठीक ५॥ बजे न सौटे तो खेर नहीं। धूस हो या न हो प्राते ही नास्ता, फिर गणघण, रेडियो और ब्यासू। खबरदार जो रात को ९ बजे बाद घर से बाहर पैर भी रखा सो। नींद आए न आए, घड़ी पर १० बिगरी का एंगिन बनते ही प्रातें बन्द कर सेनी पहती है।

प्राप ही बताइए कि विपयत रेसा की पूंछ से बड़े इस यर्म देघ में क्या कहीं रात को जस्वी सोया जा सकता है? या जब सुयह लडके भीनी-भीनी ठंडी बयार बह रही हो तो कहीं उल्ले को दिस करता है? अपनी घात तो मैं कहूँ कि सुयह-सबेरे जब मैं तीन तीन तकियों को जांच, बगल और सिर के नीचे दवाए सोठा हुमा जागता, या जागता हुमा सोठा हूँ तब मेरे पास और की तो बसी क्या, स्वयं नेहस्त्री भी प्रायेँ और खुद अपने हाथों से मुझे उतर प्रवेश का गबनर बनने का निमन्त्रण मँट करमे नमों तो यकीन मानिए उस समय दटिया छोड़ने पर मैं किसी भी तरह राबी नहीं हो सकता। उस बूझ या तो मैं बवाब देना ही पसन्द नहीं कस्येा, अगर साबादी से बूझ कहना ही पड़ा तो बिना प्रातें खोले, यही कहूँगा—जाइए, जाइए महाशय, बाबी उम्र बैल में गुबारने वाले तुम इस सोया-मुख को क्या पहचानो? घरे 'सो मुक राब में न पाट में जो मुक प्राएँ घाट में। लेकिन प्राप जानते हैं कि नेहस्त्री को नाराज करना प्राबकस प्रासान है, पर अपनी सबकी के भाबी सड़के की, होने वाली नानी को नाराज करना हँसी-खेल नहीं। क्योंकि एक तो नेहस्त्री प्रासानी से बूझे वाले नहीं और बूझे भी तो अधिक-से-अधिक एक प्रान्तराष्ट्रीय (इन्टरनेशनल) स्पीच दे दंगे। अगर ये जो हमारी दिन में १६ बार नेहर की तुस्प बनाने वाली बूबेसी हैं, यदि कहीं सबेरे-सबेरे बूठ गईं, तो समझ सीजिए, दिन

मर की खैर नहीं ।

मगवान् मूठ न बोलवाए, पहले हम बहुत सज्ज घोर नेक प्रायमी थे । लेकिन अब उनकी रोज-रोज की सन्ती और समय की पानन्दी ने नाहक हमें गुनाह करना और मूठ बोसना सिखा दिया है । प्राय ही बन्दिण कि दफ्तर से रोज-रोज कहीं सीधे घर प्राया जाता है ? कमी कहीं जाने को मन करता है कमी कहीं । कमी रास्ते में यह मिस जाते हैं, कमी वह । कसब गोष्ठी समाज और रेस्ट्रॉ की तो बात ही छोड़िए । कमी-कमी तो सीधे घर जाने के बजाय कबड्डी या गिल्सी-डबा खेलने को ही मन कर जाता है । लेकिन एक हमारी 'ये' हैं कि हमें महीने में दो-चार दिन भी ऐसी छूट देने को तैयार नहीं । परिणाम यह है कि हमें प्राक्सिर अपनी सहा सहायक मूठ का ही सहाय लेना पड़ता है । कमी कहते हैं कि दफ्तर में काम अधिक था, कमी कहते हैं कि रास्ते में साइकिस पचर हो गई और कमी कहना पड़ता है कि हे जम्मे की खीजी प्राज तो बस तुम्हारे ही पुष्य प्रताप से जीता बचा हूँ बरना वह 'एक्सीडेंट' हुआ होता कि इस बख तो हमारे कारनामे बर्मराज की प्रावासत में खुस रहे होते ।

ऐसी बात नहीं कि स्वय उनमें इन बातों को सोचने-समझने की शक्त न हो । घर-बाहर पास-पड़ोस का जो भी उनसे मिसता है, उनकी सूक्ष्म बुद्धि की तारीफ करता नहीं प्रायाता । हमें भी उनके पीठ-पीछे यह मान लेने में कोई एतराज नहीं कि अहाँ तक तुमना का प्रश्न है, यह जो बुद्धि नाम की वस्तु है दर असल, उनके हिस्से में ईस्वर के पक्षपात से, हमसे अधिक ही प्राई है । लेकिन, इसका मतसब यह तो नहीं कि हम निरे बुद्ध ही हैं । पर क्या कहें, 'ये' मुंह से तो कमी इस मनहूस शब्द का प्रयोग नहीं करतीं, लेकिन अपने प्राचरण और इकारों से मुझे इस बात का प्राभास कराती ही रहती हैं कि मैं इससे कुछ अधिक या पुषक भी नहीं हूँ ।

प्राय ही छोड़िए, मैं पढ़ा-लिखा, अक्षय-धासा सम्वा-तन्दुस्त

घादमी, कहीं दबकूझ हो सकता है ? लेकिन उनसे कोई इस बात को कह तो देखे ? 'बे' मुझे प्रकृतमन्द मानने को इतना तैयार नहीं । उनका पक्का विचार है कि मैं सभमुष ऐसा मौजूद हूँ कि मासिनें और कुजड़िनें मुझे घासानी से ठग सकती हैं, दर्जी मेरा कपड़ा मजे में खा सकता है, हर दूकानदार मुझे घायम से मूट सकता है, सफ़र में मेरी जेब काटी जा सकती है और मेरा जाने क्या-क्या नहीं हो सकता ? उनके विचार से, घर से बाहर प्रकृते में कहीं भी निरापद नहीं हूँ । न जाने कब मुझे, और कुछ नहीं किसी की नजर ही लग जाय ? न जाने कब मुझे कहीं कोई घहका ही से ? पता नहीं कब मुझे बुझार ही हो जाय तो ? और जी आजकल किसी का कोई ठिकाना है—कोई कहीं मुझ पर जादू-टोना कर बैठे तो 'बे' वस बठी ही रह जायेगी कि नहीं ? इसलिए वह सदा घाया की तरह मेरे साथ सपी रहती है । मैं गृहस्वी की गाड़ी का ड्राईवर मने ही हाऊँ, मगर यह गाड़ी बिना उमकी बिसिस के हरगिज नहीं रेंग सकती !

खुद मैं अपने आपको कोई कम होखियार और किसी से कम फ़ितना नहीं समझता, लेकिन 'बे' मुझे सिर्फ़ भोसा और मुलककड़ ही कह कर इत्याभ करती है । कभी-कभी तो मैं उनसे मजाक में कह भी देता हूँ—सुनो, तुम तो नाहक ही मुझसे शानी करके पछटाई । इस पर जब 'बे' झल्लें तरेरने लगती हैं तो उनसे पूछता हूँ—प्रच्छा बलाभो मुझमें और तुम्हारे बड़े सड़के में तुम्हारी समझ से क्या मौसिक अन्तर है ? लेकिन मुस्किल यह है कि इन बुद्धिमानी के प्रश्नों से मेरी प्रकृतमन्दी उनकी निमाह में कभी भी सही नहीं उतरती ।

कभी-कभी जब कुछ सिरफ़िर अलबारा में नारियो की आजादी के आन्दोलन का समर्पन चलता है तब मुझे बड़ा सॉम होता है । इन प्रकृत के मारे सम्पादकों, पत्रकारों और लेखकों से कोई पूछे कि घाब गायी परखत्र है या नर ? कौन कहता है कि नारी परखत्र

है ? परतन्त्र तो बेचारा आदमी है । दूर क्यों जाते हैं, खुद मुझे ही देखिए न ? मुझ-जैसी सुशिक्षित, समझदार, भले घर की सबका मान-सम्मान करने वाली, सद्गृहस्थ पत्नी हर एक को मुश्किल से ही नसीब होगी । लेकिन मैं ही जानता हूँ कि अपने घर में अपनी सहैसियों का सत्कार करने में 'वे' कितनी स्वतन्त्र हैं और अपने ही घर में अपने मित्रों की भावभगत करने में मैं कितना परतन्त्र हूँ ?

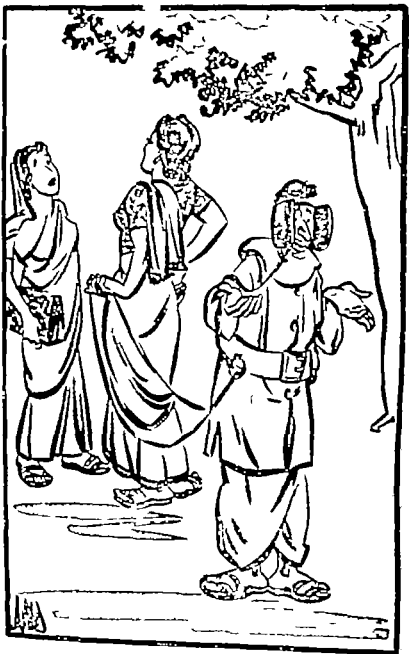
कहने का मतलब यह कि 'वे' लाखों से भरी हैं, नेत्र हैं, कुण्डल हैं और उदार प्रकृति की भी हैं लेकिन तभी तक, जब तक कि मैं उनकी समझ के दामरे के अन्दर बिना कान-पूँछ हिसाए घसा जाता हूँ । अगर कहीं उनकी खींची हुई सक्रमण रेखा (मही-नहीं पत्नी-रेखा) का प्रतिक्रमण करके अपने पत्नीव्रत धर्म से मैं जरा भी ढिगने लगता हूँ तो समझ भीजिए कि मेरी भी पुस्तनी रियासत पर सरदार पटेस की नजर पड़ी ! धब पठी !!

मैं चौक से बाजार जाऊँ, ठाठ से सिनेमा देखूँ मजे से सँर करता रहूँ लेकिन मेरा पप तभी तक सुरक्षित समझिए कि जब तक या तो वे खुद साय हों या उनकी आज्ञा की लासटेन मेरी राह के अचकार को दूर कर रही हो ! क्योंकि बिना आज्ञा के भासार जाना—भावारागदीं सिनेमा देखना—पाप, और सँर करना—महान् मूर्खता है ! इन अपराधों का बँठ भी कोई साधारण नहीं मिलता । धासुधों के महासागर में डुबकियाँ लगाने से लेकर तमहाई तक की सजा उनके 'पीनस कोड' में दर्ज है । इतना ही नहीं जुर्म समीन होने पर कभी-कभी तो तनहाई के साय-साय राशन-पानी भी बन्द कर दिया जाता है । धमी-धमी एक और एटम बम खोज निकाला गया है । धब तो बाजार-सिनेमा की घोर रुख करते ही हमारी पाकेट मार सी जाती है और वह धरणाधी बनाकर छोड़ा जाता है कि हमारी जेब में ड्राम तक को पैसे नहीं होते ।

उनकी भसाइयों और उनके साय सगे हुए इस लेकिन के किस्से का कहाँ तक बयान करें ? हास यह है कि घर में भोजन अच्छे-से

अच्छा बनता है, मगर यह होता है सब-कुछ उनकी रधि का।
 कपड़े मुझे अच्छे-से-अच्छे पहनने को मिलते हैं लेकिन मेरी पसन्द
 के बारे में मुझसे कभी एक शब्द भी नहीं पूछा जाता। मेरे घर में
 बढ़िया-से-बढ़िया झाकरी है एक-से-एक घासा बिज्र है, भगवान की
 कृपा से सब-कुछ है, लेकिन कसम ले लीजिए कि रेडियो से लेकर
 धामू छीसने की मशीन तक मैं मेरी सप्ताह और समझवारी का
 रस्ती भर भी साम्र नहीं।

सही बात तो यह है कि कभी विवाह के समय जब हम दोनों
 ने सप्तपदी के फेरे सगाए थे, उनमें मैं भले ही चोड़ी देर को भागे
 रहा हूँ, भाव तो 'बे' मुझे भागे निकलने ही नहीं देती। जब तो
 खरीदे हुए घोड़े की तरह बिना कान-पूछ हिसाए मुझे उनके पीछे-पीछे
 ही चलना है। राजी से बर्लू या नाराजी से बसना मुझे उनके पीछे
 ही है—क्योंकि डोरी मेरी उनके ही हाथ में है।



एक ही करीब हुए बाड़े की तरह बिना कान-भूँड़ हिलाए मुझे उनके
 पीछे पीछे ही चलना है
 क्योंकि बारी मेरी उनके ही हाथ में है ।*
 (पृष्ठ १४)

‘उन’के साथ बाजार जाना

‘एक दिन शाम को भोजन न मिले—सह सक्ता
 हूँ रात को पर्जन्य पर बिस्तर न हो—कोई बात नहीं
 पर भीमतीजी के छाप बाजार जाना या जाना ।
 यह तो घर धाई मुलीयत मोल केना है ।’

सरम होने की सूचना देनाया करता है ! अब अगर आपको सनिवार की शाम और रविवार के पूरे दिन की खैर मनानी है तो पहले खुपचाप बिना कान-पूँछ हिसाए इन भमारों की पूठि करनी होगी और फिर यह मनाना होगा कि हे भगवान इन्हें कम-से-कम इतनी सुबुद्धि तो दो कि अब बसते-बलते किसी अपनी सहेली के यहाँ तो मेरा पारस न करदें कि "अरा जामा जी मैंने सीसा से भी बाजार साप बसने को कह रक्ता है ।"

हाँ, अगर आपके ज्यादा धान-बच्चे नहीं हैं और मेरी तरह आपके भी एक मुन्ना और एक ही मुन्नी है तो कोई बात नहीं । जैसा अबसर में करता हूँ वैसा ही आप करें कि उन्हें अकेले बर न छोड़ें । एक को कन्धे से समारों और दूसरे को अपनी पकड़ादें । मेकिम भगवान की कृपा और पूर्वजों के पुष्य प्रताप से आपकी फुसवारी फूली हुई है और आपकी बासपर सेना में हमारे पबौसी की तरह पूरी 'इसबिन' में मदि केवल धार की ही कमी रह गई है तो सच मामिए, मैं आपको कोई ससाह देने के सायत्र नहीं हूँ ! सब तो भगवान ही आपका मालिक है । बस यह समझ लीजिए कि आप किसी कस्बे की भरी सड़क में टहलते हुए एक मुगियों के काफिले के समान हैं ! सड़क पर बसते हुए इक्के से, तांगे से, बसगाड़ी से, मोटर से—किस-किसका क्या हाल होगा है यह कोई ज्योतिषी भी नहीं बता सकता ।

मुसीबत एक हो तो कही जाय और उसका इसाज भी किया जाय । वे धोमतीजी, जिनसे घर में यह कहा जाय कि अरा उठकर पानी ही पिसादो, तो नोकर को आवाज देने लगती हैं, या उसके अभाव में ऐसे उठती हैं कि न जाने दिन भर इन्हें किस अक्की में खुतना पड़ा है ! वही बाजार में पहुँचते ही इतनी खुस्त और बचस होजाती हैं कि भीसठ हिन्दुस्तानी पति उस वक्त उनका मुखाबसा नहीं कर सकता ! एक दूकान से दूसरी पर इस अपाटे से पहुँचती हैं कि आपको इसका जब तक कि वह यहाँ से मुद आबाज न दें, पता

नहीं बस सकता। और, यह तो दूकानों की बात है कि भीड़ भाड़ में पता नहीं बसता कि कहाँ गए और क्या हुआ? लेकिन मेरा तो अनुभव यह है कि घरे बाजार और खुसी सबक पर भी भाप बनने में उनका साथ नहीं दे सकते। यादों के डिब्बे की तरह भापका स्थान पीछे ही सुरक्षित है।

तनिक भाप उस दशा को कल्पना कीजिए कि जब भाप मुन्ने को कच्चे से लगाए, मुन्नी का हाथ धाम अपनी बगल में पीछों का पुसन्दा लिये, भीमतीजी के पीछे-पीछे ज़िचट रहे हैं और भापके मिससे वाले हैं कि भापसे नमस्ते का फ़र्ज मिरफ़ उसी समय धवा करना चाहते हैं! नमस्ते करके ही वे टस जाएँ तो भी उनीमत समझिए! लेकिन क्या बठाएँ, उनमें से कुछ महाशय तो इस क़दर हमदर्द होते हैं कि उनकी मनमनसाहत का खुले शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता। वे कुछ देर ऊहर-ऊहरा कर हमारी हासत पर सरस खाना चाहते हैं और साचारी यह है कि पत्नी के सामने असभ्य व्यवहार के दोषी न बन जाने के कारण समझिए या अपनी मनमनसाहत और स्थिति के सकाजे से बिबषा हमें कुपित होने के धजाय उन धूर्तों से मुस्कराकर ही बातें करनी पड़ती हैं।

तस्वीर का एक और भी पहलू है। हम बड़े धादशावादी हैं, घड़सके के समाज-सुधारक हैं, स्वदेही का मत भरी समा में से चुके हैं लेकिन एक हमारी ‘बे’ है कि इन सब चीजों को बाह्यगत और बेतुकी समझती हैं। हम समझते हैं कि भारतीय औरतों की साड़ी जरा मोटी और हाथकले सूत की होनी चाहिए, लेकिन उनको ठेठ बिसापत की पारदर्शी वायल पसन्द है। हम सौन्दर्य और गृभार के लिए पाउडर, क्रीम और सिपिस्टिक को विस्कुस धाव स्पक नहीं समझते। यही नहीं, हमारा एसा स्यास है कि इन चीजों के प्रयोग से स्वामाबिक सौंदर्य मष्ट होजाता है। लेकिन भाइ मेरे, जरा भाप इस तर्क को घर में प्रयोग करके तो देखिए, तीसरा महा-

युद्ध पहले ही शुरू न होजाय तो मेरा नाम नहीं ! हम फासतू चीजों के एकत्रीकरण के सक्त सिद्धांत हैं । लेकिन श्रीमतीजी का हास यह है कि अगर उनका वश चले और घर में जमह हो, तो वे सारे बाजार को अपनी सन्नूकों और घासमारियों से भर दें ।

गरण यह है कि हमारी दृष्टियाँ भ्रमण हैं, उनकी भ्रमण ! सुखीबत यह कि 'बे' अपनी पसन्द हम पर बाहिर कर सकती हैं, लेकिन हम भरे बाजार में उनकी रुचि, गुमाव योग्यता और पसन्द को कोई धुनौती नहीं दे सकते । क्योंकि घर छुट जाय, इसकी कोई चिन्ता नहीं, सिद्धान्तों का भाँसों भागे खून होता रहे, इसका भी कोई महत्त्व नहीं, महत्त्व सिर्फ इस बात का है, चिन्ता सिर्फ इतनी है कि कहीं कोई ऐसी बात न होजाय जिसे सम्य-समाज में 'एटीकेट' के बाहर धराया जाता है । तो उनके साथ बाजार जाने में होता यह है कि हमें अपने धन को छोड़कर अपने तन और मन दोनों पर संयम रखना पड़ता है !

धमी कुछ दिन हुए, कहीं एक लेख भी पढ़ा था । इसमें लिखा था कि पति की प्रवृत्ति अन्दन के समान होनी चाहिए और पत्नी की प्रवृत्ति दियासलाई की तरह । पत्नी की प्रवृत्ति से तो हमारा कोई बास्ता नहीं । मुझे भी कोई लेख लिखना पड़े तो मैं दियासलाई छोड़ उन्हें माटवी सुरंग की उपमा दे डालूँ लेकिन जहाँ तक पति की प्रकृति का सवाल है, हमें अन्दन की उपमा की कद्र करनी चाहिए ।

लेकिन बातों से और अन्दन धनपर रहने से ही काम चल जाय तो कोई सुखीबत खडो न हा । यहाँ तो सुखीबत यह है कि भ्रामणी अपनी सीमित है और दृष्टाएँ उनकी असोमित ! पास-पड़ोस में जिल्लेरी धीरतों पर जितने नये दिवायन की साइडियाँ के देखती हैं, उन सबको खरी लेना चाहती हैं । इस पर खतुर दूकानदार भी पतिमों की हारात पर कोई धास रहम साने वाले नहीं होते । उन्हें एन मामूली-सी धींट का टुकड़ा दिखाने के लिए कहिए, वे रंग-बिरंगे



"घर उनका बस बत्ते धीरे घर में जगह हो तो वह सारे बाजार को
 अपनी हाथों धीरे घासमारियों में भर दें!" (पृष्ठ २०)

‘उनके साथ बाजार जाना

पानों के अम्बार सगा दोगे और इतनी तरह-तरह की विन-मसन्द
 भीजें पेश करेंगे कि आपकी ‘उनके मन में विभ्रम पैदा होजाए कि
 क्या तो सँ और क्या छोड़ें ? गरब यह है कि बिना गाँठ कटे आपकी
 गति नहीं । लेकिन सोचिए, आसिर आपकी गाँठ कहीं तक कटेगी ?
 कोई कुबेर का लजामा तो आपके यहाँ गढ़ा है नहीं ? अक्सर होता
 यह है कि ‘पर्स’ बेचारा साधार होकर मुँह फाड़ देता है, मगर उनकी
 कमनाएँ पूरी नहीं होती । आसिरी बक्त कमी-कमी तो ऐसा भी आ
 जाता है कि सौटने के लिए सागे के वैसे तो दर-किनार, मुन्ने के गुम्बारे
 के लिए भी एक आना खेप में नहीं रहता । तब यह जरूरी है कि आप
 पग-यात्रा को महत्व दें । यह भी जरूरी है कि आप मुन्ना, मुन्नी
 और सामान के भार से दक जाएँ और आपको सहायता के लिए
 श्रीमतीजी से अपील करनी पड़े और उस अपील के प्रत्युत्तर
 में जो सर्टीफिकेट आपको इलायत फरमाया जाय, उससे आपकी
 भात्मा हरी होजाय और आगे से आप कमी उनके साथ बाजार न
 जाने का सकल्प कर बैठें ।

लेकिन आपका सकल्प कितना टिकाऊ है, और आपकी मुसीबतों
 का सिससिसा कितना छोटा है—यह हम अच्छी तरह जानते हैं !

दिल्ली में मकान सोचते-सोचते आज तीन सान होगए, मगर मकान क्या हुआ एक मुसीबत होगई है। नई दिल्ली और कनाट प्लेस के ऊँचे-ऊँचे महलों से लेकर घहर की सोमा में स्थित ब्रिजनी भी गन्दी और उजसी गलियाँ हैं, उन सबकी धरण रज हम शीघ्र पर फड़ा चुके हैं, लेकिन तकदीर कुछ ऐसी खोटी है कि सब जगह से एक ही टका-सा उत्तर मिलता है—'जी, प्रमी तो कहीं कोई जामी नहीं है।'

कमी-कमी हम सोचते हैं कि इतनी सगन यदि कहीं हमने पिछले दो-एक स्वदेशी भान्दासनों में दिवा दी होती तो आज कैसा मकान कहीं के एम० एस० ए० होगए होते। सब हम तो क्या, हमारे रिस्तेदारों तक को बहु कोठियाँ 'एलाट' हुई होतीं कि सोग भौचकके छू जाते। या गोसाईं तुमसीदासजी की तरह हमें भी अपनी पत्नी का ब्यंग-बाण सग गया होता (हालांकि उनकी तरह से इस काम में कमी कोई जान-बूझकर ब्रूक नहीं हुई) और हमने भी जग-जारी छोड़कर 'हरि से हेत' किया होता तो विपवास मानिए कि गिरियों के भी ध्यान में न माने वामा वह परमात्मा भी हमारे ऐसे खम्बे तप से पिघल गया होता और मकान की तो क्या घनी, हम बिसोकी का राज्य भी पागए होते। फिर हमें घर-गिरस्ती बसाने के लिए यों किसी दड़वे की जरूरत ही नहीं पड़ती।

आपसे क्या धिमाएँ, जितने भी अपने रिस्तेदार हैं या भासानी से जिन्हें रिस्तेदार बनाया जा सकता है, सब मानिए, उन सबके घर दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह दिन छुटकर हमने अपनी नई और पुरानी सब रिस्तेदारियाँ खरम कर बाली हैं। अब तो हास यह है कि नूने भटके प्रगर किसी दिन हम कहीं उनसे मिलने भी जा निकलते हैं तो उनकी पलियाँ पति को डाँटकर भन्दर से ही कहलबा देती

हैं—'वे तो बाहर गए हैं !'

अब तो शहर की धर्मशाखाओं के मुन्सी मेहतर और चौकीदारों पर ही हमारी दिल्ली बसी हुई है ! जिस दिन इनकी भाँसें भी फिर गईं—बस उसी दिन हमारे लिए ससार सूना हो जाएगा ! इन लोगों से जैसे हमारे टाल्लुक हैं वैसे आपको सगे भाइयों में भी नहीं मिसेंगे ! हों भी क्यों नहीं ? जब एक-एक घमसासा में तीन-तीन दिन नियम से और दस-दस दिन घाघसी से हम बेरा काम चुके हैं तो ये मुन्सी, मेहतर और चौकीदार, नसा हमें नहीं पहचानेंगे तो और किसे पहचानेंगे ?

कितनी ही बार तो ऐसा हुआ है कि दिन-भर दफ्तर में काम करके हम रात को गुरुद्वारे में जा सोए हैं और सुबह 'सत् भी भकान' कहकर वहाँ से 'कड़ाह प्रमाद' प्राप्त करके सिसक भाए हैं !

हाँ अभी फुटपाथ पर सोने की नीयत नहीं आई ! पर हमारी तकदीर का अमर यही काम रहा और भगवान की ऐसी ही कृपा बनी रही कि दिल्ली में इसी तरह काम भरती होती चली गई तो बह दिन भी दूर नहीं समझना चाहिए कि जब हम विस्तर बगल में दबाए किसी फुटपाथ की तसाध में धपेरे में निकल पड़ेंगे ।

यह नहीं कि हमने मकान की तलाश में कहीं कसर छोड़ दी हो या अपनी-सी करके न रहे हो । सब तो यह है कि कोई आई० सी० एस० या पी० सी० एस० के इम्तिहानों में भी क्या तैयारी करके बठ्ठा होगा कि जिस सूझ-बूझ और तत्परता से हम मकान की खोज में निकसते हैं ।

दोस्तों की बात तो छोड़ दीजिए, मिसने-बुसने वालों और जिनसे थोड़ी-सी भी राम राम या दुभा-ससाम बाकी है उन सबसे हम दिन में तीन बार पूछ लेते हैं "कहिए, कहीं कोई सुराग मिला ?" और जैसे ही नहीं हमें अपनी तकदीर कुछ कुछ सुसाती मबर आती है यानी पता चलता है कि कहीं कोई मकान साली हुआ है या होमे जाना है हम उसके पास-पास बसे ही

मेंढरा उठते हैं जैसे कि चुनावों के दिनों में हमारे भाई-बन्द भाय के प्राये धीर गाँठ के पूरे उम्मीदवारों के पास धा मँडारते हैं।

शापद भारतीय पुनिम के सो० भाई० बी० वाले भी अपने फर्जी मुबारिम का पता इस होशियारी और मुस्तेदी से नहीं लगाते होंगे कि जिस लगन और सफाई से हम खानो मकान के मानिक का ही नहीं उसके भाई नतीजे, माके-सुसरो तप की सोज-सबर के प्राते हैं और तरह-तरह से अपनी घातों और सिफारिशों का प्रान प्रयत्नों के बाद भी हमारा मोर्चा धमी तक कहीं धम नहीं पाया है और हमारी गोली हर धार खाली ही गई है।

उस समय की हमारी हासल का प्राप धन्दाआ तक नहीं सगा सकते कि जब मकान-बपी संका की खोज में हम न जाने किल-किल सुरसाओं के मुँह से निकलकर निहृष्ट पर्वत पर पहुँचते हैं और इससे पहले कि हम मद्यक समान रूप धारण करें हमें पता धसता है कि वह सोने की पुरी तो पहले ही घुट गई—मर्यात् मकान हमारे पहुँचते-पहुँचते फिर गया है और हमें बड़े धफसोस के साथ कहा गया है, 'बी, धाप कम नहीं प्राए, नहीं तो बह धापका ही धा। हमने उसे अपने सड़के के, साले के, माई के, नतीजे को धमी-धमी उठ दिया है।'

तो मैंने कहा, दिल्ली में सब कृष है, पर मकान नहीं। यहाँ धार प्रहर सड़मी बरसती है, पर गृहसकमी को टिकाने के लिए धार हाय धपह नहीं। धाप धगर कगाल है तो दिल्ली धाजाइए, धोर बाजार से मासामास होजाएगी। यदि पैसा बहुत है और उसके धार्ण करने की कोई सुरत नजर नहीं धारही तो धारहूखम्बे के बाजार में सिर्फ एक बककर काट भीजिए, सुरतें-ही-सुरतें नजर धाने सोंगी। इन दोनों में से भी धाप किसीके साथक नहीं तो नौकरी यहाँ दिन में तीन की धा सकती है और छः छोडी आ सकती है। सब कहता है कि धीरे-धीरे के धमाने में रायबहादुरी का मिलना भी

इतना कठिन नहीं था, जितना इस समय एक छोटे-से मकान का मिलना कठिन होगया है !

अभी ठाजी परसों की बात है । हम एक नई बस्ती में आसी मकान का सुराग पाकर पहुँचे । किवाड़ों पर बार-बार दस्तक देने और भीखने-भित्ताने पर मकान-मासिक मुक्तिस से निकसे और बिगड़ते हुए-से बोले 'क्यों क्या काम है ?

'जी मैंने कहा—'कोई मकान आसी सुना है ?'

मकान मासिक बिड़बिड़ाकर बोले, 'सुबह से शाम तक मकान मकान ! यहाँ कोई आसी नहीं है !'

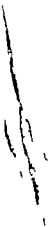
सेबिन जैसे चिकने भड़े पर पानी की बूँदें नहीं ठहरतीं वैसे ही इन उत्तरों को सुनते-सुनते हम भी एक ही पक्के होगए हैं ! हमने और भी बिनम्र होकर कहा 'जी ठीक है गही होगा । पर बह को अपने सासा छवामीमस हैं न ? उन्होंने भेजा है और कहा है कि सासा घदामीमस से मेरा नाम लेना । सासाजी बड़ी मेहरवानी होगी !'

सासाजी ने बड़े ध्यान से हमें ऊपर से नीचे तक देखा । मानो राहुर कोठवाली में दीवान साहब किसी नामी गुण्डे की सिनास्य कर रहे हों ! फिर थोड़ी देर सोचकर बोले 'अन्दर घाइए !'

सतयुग में जब गज को ग्राह मे प्रसा था और उसने सूँठ ऊँची करके हरि भगवान से टेर लगाइ थी कि हे अघरण अरण, भक्त बत्सस प्रभो तुम्हीं हो बीमानाम—अब तेरे सिमा कौन भरा इप्य कन्हैया ! ठीक इसी तरह ही मैंने सरुट मोहन नाम 'तिहारी' का पाठ करते हुए कहा कि हे पवनपुत्र 'अब तूही बचा साज मेरी' और घठ इन्द्र माना के घट में ।

अन्दर लेजाकर सासा ने हमें अपनी जलाइन के सामने सड़ा कर दिया । बोले 'यह मकान आहूते हैं, बात करलो इनसे !'

राहुर से गिरा तो बंदूस में घटका ! सासाजी से तो हनुमानजी बिजय दिना भी सकते थे, पर सासाइन के सामने तो हमें उनजी भी मानी कृप करती दिगाई दी !





मरान मातकिन बोनी "त्री पापनी घारी होयर्द ई ? (पृष्ठ २०)

मकान नहीं मिखा

भूषट सरफावर मकान मासकिन बोती, 'जी आपकी खादी होगई है ?'

प्रबल सुनकर मैं सप्राटे में आगया । आबिर सभाइन का मतसब क्या है ? कुछ देर बाद जब अक्स टिकाने आईं तो मासूम हुषा कि सभाइन ने तो पहले ही वार में हमारी घरती जिसका दी होती पर वह तो यों कहिए कि हमारे पिताजी बड़े बुद्धिमान थे, उन्होंने आज के छतरे को १६ साल पहले ही अनुभव करके हमारी धाई-माई वषपन में ही कर दी थी !

हमने सीना तानकर कहा, 'जी भगवान की हुषा से दो बच्चे भी हैं ।

फिर पुछा, 'आपकी बहू सदाबा तो नहीं है '

हमने मन में कहा कि सदाबा तो वह ऐसी है कि उसके मारे भगवा-सासा भर छोडकर दिस्नो देखनी पड़ी है । पर प्रकट में सभाइन से कहा 'जी, विस्कुम गऊ है गऊ ! भस घर की लडकी है, सीधे मुंह उठाकर बात भी नहीं करना आता !

लेकिन, यहीं तक शनीमत नहीं थी । सेठानी के प्रश्नों की बौध्दार जारी थी—बच्चे ऊपनी तो नहीं हैं ? आप प्याज तो नहीं खाते ? पंजाबी ता नहीं हैं ? कहाँ काम करते हैं ? कितनी आमदनी हो जाती है ? अब तक कितने मकान बदसे हैं ? मेहमान तो आपके यहाँ नहीं आते ? प्रादि-प्रादि ।

फिर कहा, 'जी, बहू-बेटियों का घर है । हम तो भले घादमी को ही अपने यहाँ बसाते हैं । और देखिए बाबूजी, यह बात पहले से सुन सें—एतें सब अडकनी पड़ेगी, पलाना रोज घुमाना होया, बीना, आंगन सब आपके जिम्मे है । और देखिए, मकान की मरम्मत हम नहीं कराएंगे कि पीछे आप यह कहें कि यह सगवादा, यह सगवादा, यह डूट गया यह फट गया ।

आप जाते हैं कि गरख ठावनी होती है । जैसा कि तय था इन सब बातों का उत्तर 'हाँ' में ही दिया गया । हम समझते थे कि

बस मैदान मार लिया ! लेकिन हमें यह क्या पता था कि अभी हस्दी-धाटी का संप्राम बाकी है ! सासाजी जो अभी तक गुम बने बटे थे अब उनकी खोज खुशी । कहने लगे, 'बेखिए वाकू साहय, हम किसी बाहर के धादमी को मकान नहीं देखे, पर क्योंकि आप सासा धदामीमम के भेजे हुए हैं तो ऐसी बात है कि आपको इन्कार भी नहीं किया जा सकता !'

हमने समझा कि धायद हमारी बृहस्पत ओर मार रही है ।

लेकिन कुछ ही क्षण बाद सासा धदामीमम ने फिर कहा 'बेखिए जी हम सड़ाई भगाड़े वाले धादमी नहीं हैं । जो बात तय होजाती है उस पर बाद में भगाड़ा-टंटा नहीं करते ।'

हमने थडाकु भक्त की माँति गर्दन मुकामी धौर उनके प्रबचन को प्राकठ पान करते गए ।

फिर उम्होंने पसर्का को दो-तीन बार भमकाकर धोठों को पहले थिकोड़ा धौर फिर धागे फंसाकर धपने धारों धौर देखते हुए धीरे धे बहा, 'हम कोई मिसा-यकी नहीं करेगे । किराय की रसीद भी नहीं बेंगे । मकान जब बाहेगे सब सासी करा सेंगे ।'

मसा में बाहकर भी इस पर कोई धापति कैसे कर सकता था ?

सासाजी कहते गए, 'ऊपर दो कमरे हैं, किराया भी मामूली है, यही—६० ६० रुपए । बाटर टेक्स धसग बिजली टेक्स धसग मंगी का महीना धसग, फिनाइल के धाम धसग । धापको धदामीमम में भेजा है, नहीं तो एक-एक कमरे के १००-१०० रुपए धम धुके हैं । धाप जैसे मसे धादमियों से धधिक सेना धोना भी नहीं देता ! मकान धाप जानते हैं सड़ाई में धनबापा है । २५०००) टूट गए हैं ! कोई धौर काम तो धपने यहाँ होता नहीं । बस १००) ही धौर दे दीजिए ।

धुम्भारे की डोरी गुम जाने पर जैसे उसकी फूँक धरक धाठी है, वैसे ही सासाजी की महाप्राण धारों को सुनते-सुनते हमारी धाठी बंध गई थी । फिर भी हमने धौर भगाकर पूछा, 'जी यह

मकान नहीं मिला

५००) क्या किराए के पेशगी हैं ?”

बोले, प्रजी आपसे क्या पेशगी लेंगे ? भले भादमी किसी का छदाम नहीं रखते । आजकल ५००) होते ही कितने हैं ? इस सड़वाई में जो खए की कदर प्रभेसे की रह गई है !

मैंने बरते-बरते पूछा, “तो आपका मतलब पगबी से है ?” तो बोले, ‘भाप इसे पगबी कहते हैं—राम राम ! प्रजी यह तो नए मकान की मुंह-दिखाई है बाबूजी ! यह भी आपकी खातिर । मैं आपको दूसरा नहीं मिस सकता !”

उस प्रासीधान मकान की वावत कुछ न कहना ही प्रच्छा होगा । बच्चा फर्श टूटी छत । कमरे ऐसे प्रासीधान कि जिनमें कोई ताक नहीं, प्रालमारी नहीं, जंगला नहीं । सन्ने चौड़े इतने कि दो दाटें मुश्किल से बिछ सकें । मोरी नहीं, परनासा नहीं, रसोई नहीं, पबहरी नहीं ।

दबी बिल्सी जसे जूहों से नान बटाती है, बैसे ही हम वहाँ से उठकर बले भाए हैं और अपनी सारी भूमल कसम के सहारे बेकार हागबों पर उतार रहे हैं । भाप इसे पढ़कर हँसेंगे, कुछ को शायद हमारे हास पर हमदर्दी भी होबाय लेकिन धर्मशाला में सीटकर अपनी धीमतीजी को हम क्या उत्तर देंगे, यह प्रभी तक समझ में नहीं आया है ।

आजकल तो हाल कुछ ऐसा होगया है कि क्या घर और क्या बाहर, कहीं कोई बात बनाए ही नहीं बनती। एक हमारे महा-महिमामय पूर्वज थे कि उनके घर यदि कभी कोई अतिथि आजाता तो समझते थे कि जैसे स्वयं भगवान ने ही उन पर कृपा की हो। परिवार-भर में आनन्द का सागर हिमोरे सेने सगता। दूर से ही अर्घ्य देते और पसक-पाँवसे बिछाते अतिथि महोदय का सुस्वागत किया जाता। भाँति भाँति के पेय-पकवानों से उनकी रसना शृप्त की जाती। भाँति-भाँति के आनन्ददायक व्यवहार करते जाते। इस प्रकार फूँक-फूँक कर कदम रखा जाता कि अतिथि को कोई ठेस न लग जाय। यह समझिए कि सारा घर मेहमान के मुँह की ओर ताकता रहता। इससे पहले कि भीमान् कुछ कहें उनकी फरमाइशें पूरी कर दी जातीं।

तो मैंने कहा एक तो वह युग था और एक आज है कि मेहमान का घर आना तो दूर, अगर कहीं से किसीकी पिट्ठी भी आजाती है कि हमारा विचार दिन्मी देखने का है तो सच मानिए, नाड़ी अपना नियत स्थान छोड़ देती है और दिस की घडकन कम-से-कम चार गुनी अवश्य ही बढ़ जाती है। हम विदबास भी नहीं कर पाते कि यह सज्जन सच सिद्ध रहे हैं या मराक कर रहे हैं? दिस अन्दर-ही-अन्दर मनाता है कि हे भगवान यह मन्नाक ही हो। और आप जानते ही हैं कि भगवान् हमेशा मनुष्य का साथ नहीं दिया करते। इसलिये केवल भगवान पर ही भरोसा न करके हम अपनी विद्यास बाहिनी मुञ्जा में जो पाँच घेरुमियो हे उनमें स्वयं देखी 'पार्कर' सम्हाल लेते हैं और मित्र को सिद्धते हैं—

“भाई, तुम्हारे दिन्मी आने के निणय से हमें खुशी हुई। तुम्हें

वेले बहुत दिन भी तो होगए हैं ! घाते तो बड़ा ही बिलत प्रसन्न होता ! लेकिन मुझे दुःख है कि मैं स्वयं तुम्हें यहाँ न आने की सलाह दे रहा हूँ । मैं अपने बड़े-से-बड़े स्वाब के लिए भी तुम्हारा अहित नहीं सोच सकता । बात यह है कि यह मौसम दिल्ली आने का नहीं । सफ़र में जो परेशानी होती है और रेसगाड़ियों में जो मुसीबत है वह तो दर-किनार, उसे तो तुम जब आओगे खुद सुगत कर समझ ही लोगे मगर इतनी दिक्कत के बाद जब दिल्ली पहुँचोगे तो यहाँ का हास देखकर तुम्हें भारी निराशा होगी । एक तरफ़ बेशक घस रही है तो दूसरी तरफ़ हैजा फैल रहा है ! न कहीं आने के और न कहीं जाने के ! दिन-भर धर में झँप पड़ रहो और बाहर निकसो तो आजकल न यहाँ कोई पियेट्रिकस कम्पनी है न सिनेमाघों में अच्छे खेस ही घस रहे हैं ! फिर आजकल समय भी बाहर निकलने का जरा कम ही है । मेरी तो तुमसे मिलने की बड़ी इच्छा है, मगर क्या करताऊ ? परिस्थितियाँ मेरी भावनाओं का साधारण बिये देरही हैं और मैं तुम्हें फ़िल्हास यहाँ न आने की ही सलाह देने के लिए बिलदा हूँ ।

अक्सर मेक आदमी हमारी इस सलाह को मान लेते हैं । पर भाई, पाँचों अँगुनियाँ एक-सी तो होती नहीं ? कुछ हमारे भी गुरु होते हैं कि बिना जिद्दी-यकी के ही दुर्भाग्य की तरह भा घमकते हैं ।

जगल में रोद की दहाड़ सुनकर बछड़े के प्राण यों न सूत जाते होंगे जैसे मेहमान की नमस्ते से हमारे होश हिरल हो जाते हैं ! इस मुसीबत में बचने के लिए हमने कुछ कम पेटबन्दियाँ नहीं कीं । जैसे, मकान छोड़कर उस जगह लिया है जहाँ न ताँमा पहुँच सकता है न रिक्का । न पासकी न टट्टू । गली के अन्दर जाती इस कदर जाती है कि कोई भूसमुलियाँ बनाने वाला आकर मेरे मकान के मन्चे का देस कि यहाँ तक पहुँचना कितनी बहादुरी की बाध है ! और मकान तक पहुँचने से ही कोई हम तक पहुँच जाया हो, ऐसी

बात नहीं । चीने के ऊपर चीना और कमरे के बाद कमरा, इस कदर बला जाता है कि जब तक कोई म्युनिसिपैलिटी के मीपू की सी धावाब में ही हमारे नाम का उच्चारण न करे, हमारे कान पर जूँ नहीं रेंग सकती । फिर सुनकर हम अवाब दे ही देंगे इसकी क्या गारण्टी है ? पहले सड़के को भेजेंगे कि देखो कौन है ? कैसा है ? फिर सड़के की रिपोर्ट पर श्रीमतीजी लिङ्की से उम्क-ठाक कर मुधायना फरमाएँगी कि कहीं सामान तो साथ में नहीं है ? बर्षों-कब्जों की पलटन तो पीछा नहीं कर रही ? इस प्रकार जब श्रीमतीजी सिगनल दे देती हैं और हम समझते हैं कि 'भाइनभित्तियर' है तो पहले हम तिखने से झँकते हैं और जब तक बहुत ही हानि नुकसान का प्रश्न न हो, हम १६ प्रतिशत कहसबा देते हैं—'बाबूजी बाहर गए हैं ।

पर सारी प्रकल का ठेका, सोभिए, हमने ही मोढ़े से रखा है । मगवान ने एक-से-एक विचित्र खोपड़ियाँ, यानी महापुरुष, इस धरा धाम पर चुन-चुन कर उतारे हैं ! साथ यह जानकर कि किसे में यानी घर में तो हम भ्रैय हैं, बाहर सड़क पर, यानी लुछे में, हम पर हमसा करते हैं ! दप्रतर में सीचे पहुँचते हैं !

लेकिन इससे पहले कि वह हमसे कुछ कहें हमने भी कुछ गुर पाद कर रखे हैं । हाथ मिसाते ही हम उनसे प्रदन करते हैं—'कहिए, कहीं टिके हैं ?' और उनके उत्तर की प्रतीक्षा किम्बे विना तत्काल ही दूखण वार कर बैठते हैं—'कब जा रहे हैं ? अगर इन दो सीरों से भी कोई बहापुर बच जाता है तो फिर हम अपना धनोष बहास्रन बसाते हैं—'नास्ता-वास्ता तो कर प्राये हैं न ?'

मानना पड़ेगा कि दुनिया में सभी घरीफ धावमियों की कमी नहीं है । अगर भले धावमी न हों तो भरती-भासमान कैसे टिके रह सकते हैं ? तो, मैंने कहा, हमारे इन प्रदनों को चुनकर बिरमा ही मसा धावमी हमारे यहाँ टिकने की हिम्मत कर पाता है ! प्रकसर मोम भबराकर कह ही तो बैठते हैं—'जी, सब कुछ ठीक है, आप

ठकसीफ्त न करें !

लेकिन उनके लिए क्या किया जाय जिन्हें हमने छलती से, धनवाने में ही, बचपन में दोस्त मान लिया नहीं, कह दिया था ! जो हमारे रीब को रीब नहीं समझते, प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठा नहीं मानते और हमारी सुसीबत में हँस-हँसकर मजा लेते हैं । घराल में हाथ हम इन्हीं सौगों के घाते हैं ! जो न चिट्ठी देते हैं, न जिन्हें हमसे कुछ पूछने की जरूरत है और हम चाहे पाठाल में छिपकर क्या न बैठ जाएँ, वे हमारी खोज निजामने में एकदम शीतान की तरह समर्थ हैं । हमको तो पता चलेगा पीछे, इससे पहले ही बैठक पर सदस-सल उनका फन्ना होखुका होगा । उन्हें रोक भी कौन सकता है ? कम्बस्त, घर में बुसते ही हमारे बच्चों को अपना सठीजा बना सेंगे हमारी मा के पहले ही झुकर कर घरण छू सेंगे और मौकर को इस अधिबार स हुबम सेंगे, जैसे वह तनल्वाह हर महीने इन्हीं से पाता है !

इन सौगों का इनाम सब पूछिए, हमारे पास नहीं । इनरी दबा दरससम हमारी देबीजी के पाग है । मेहमान के घर में घाते हो वे बहु रूप भारण करती हैं कि कनी-कमी तो हमको भी यह पट्टामने में देग लग जामा करती है कि धात्रिग यह हमारे ही बच्चे की मा है या कोई और ?

अक्सर मेहमान के घर में दानिस होते ही 'वे' भीमार होजाया करती हैं । उनके स्वभाव में बदलापन भी उन दिनों कुछ अधिक आ जाता है । धीसतन हमारे घर में बच्चे उन दिनों ज्यादा पिग करने हैं बसतन अधिक दूटा करते हैं और दास-दास में मिषे घपती उप स्थिति ओर-ओर से मूबिस किया करती हैं । मेहरी का इन दिनों प्राय जवाय दे दिया जाता है और हमारी श्रीमतीमी जो धाये दिन घर की देहमी क बाहर रीर नहीं निकालती तीन-तीन, बार-बार घटे महेलियों के यही जाकर ताल गमने में अपने बेकार समय वा-नपयोग किया करती हैं !



“बापको तो पता चलेगा पीछे। इससे पहले ही बापकी बैठक पर सख्त-बस
 उनका कब्जा हो चुका होता।” (पृष्ठ ३४)

तकसीफ न करें !'

लेकिन, उनके लिए क्या किया जाय जिन्हें हमने रासती से घनजाने में ही, बचपन में दोस्त मान लिया, नहीं, कह दिया था ! जो हमारे रौब को रौब नहीं समझते, प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठा नहीं मानते और हमारी सुसीखत में हँस-हँसकर मजा लेते हैं। घसम में हाथ हम इन्हीं लोगों के आते हैं ! जो न चिट्ठी देते हैं, न जिन्हें हमसे कुछ पूछने की जरूरत है और हम चाहे पातास में छिपकर क्यों न बैठ जाएँ, वे हमारी सोच निकालने में एकदम शैतान की तरह समर्थ हैं। हमको तो पता बसेमा पीछे, इससे पहले ही बैठक पर सदल-बस उनका फम्बा होशुका होगा ! उन्हें रोक भी कौन सकता है ? कम्बस्त घर में घुसते ही हमारे बच्चों को घपना भलीभा बना लेंगे, हमारी मा के पहले ही मुकदर घरण छू लेंगे और गौकर को इस अधिकार से हुरम देंगे जैसे वह तनस्वाह हर महीने इन्हीं से पाता है !

इन लोगों का इलाज सच पूछिए, हमारे पास नहीं। इनकी दवा दरमसम हमारी देवीजी के पास है। मेहमान के घर में आते हो 'वे' यह रूप भारण करती हैं कि कनी-कनी तो इनको भी यह पहचानने में देर लग जामा करती है कि धातिर यह हमारे ही बच्चे की मा हैं या कोई और ?

अक्सर मेहमान के घर में दाखिल होते ही 'वे' यीमार होजाया करती हैं। उनके स्वभाव में रूपापन भी उन दिनों कुछ अधिक आ जाता है। प्रौसतन हमारे घर में बच्चे उन दिनों प्यादा पिटा करते हैं घर्तन अधिक टूटा करते हैं और वास-श्याक में मिर्चे घपनी उप स्थिति जोर-शोर से सूचित किया करती हैं। मेहरी को इन दिनों प्रायः जवाय दे दिया जाता है और हमारी यीमतीजी जो प्राये-दिन घर की देहली के बाहर पैर नहीं निकालतीं, तीन-तीन, चार चार घंटे सहेतियों के यहाँ जाकर ताश खेसने में अपने बेजार समय का सदुपयोग किया करती हैं !



“पापको जो पडा बसेगा पीछ। एउठे पाहेने ही एउटा ईश्वर-रक्षण
 अपना कर्म होयुका होय।” (इन्द्र ३८)

हमारे घर में वह इश्य बेसने सामक होसा है कि जब मेहमान महाने के लिए सोटा मांगते हैं तो उन्हें कटोरी मिलाती है ! सगाने को साबुन मांगते हैं तो उन्हें कपड़े धोने का बंडा पकड़ा दिया जाता है ! पोंछने को तौलिया मांगते हैं तो सरसों के तेल की बोतल बढ़ा दी जाती है ! कहते हैं कि भगवान शिव समुद्र में से निकले बिप को कठ में उतार गए थे लेकिन वे दिल्ली में हमारे मेहमान बनकर आएँ, मेरी चुनौती है कि बिप तो दूर, वे हमारी यहाँ की समूठोपम दाम तक को गले के नीचे नहीं उतार सकते ! न जाने किस वजरी से छान-छान कर श्रीमतीजी इसमें मेहमानों के लिए कूटकियाँ मिलाती हैं कि जाने वाले को छठी का दूध याद आजाता है और घागे से मेरे यहाँ आता तो दरकिनार भले आदमी दिल्ली की तरफ़ नी पर करके सोने की हिम्मत नहीं कर पाते !

आप घायद मुझे और मेरी श्रीमतीजी को कोठें और कहें कि हम भी क्या मनहूस आदमी हैं जो मेहमान से यों बिदकते हैं ! यह तो असामाजिकता है । फूडइपन है । खुदगर्जी है । ऐसा आदमी नमा समाज में सम्म कहसाने सामक है ।

तो मैं आपसे विनम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहता हूँ कि अपनी सम्मता आप अपने पास ही रहने दें ! मैं हरगिज भी इन बातों में आने वाला आसामी नहीं हूँ ।

हाँ, मैं यह जानता हूँ कि मेहमानों की खातिर कर-करके सोय बड़े ऊँचे पथों पर पहुँच गए हैं । अपनी मेहमाननवाजी के कारण ही आज बहुत-से साधारण आदमी नेता बने हुए हैं । लोगों को चाय पिसा-पिसाकर बकीसों में अपनी वकामत बमा सी है, डाक्टरों के रोगो बढ़ गए हैं, सेलकों की रचनाएँ सपावकों को पसन्द आने लगी हैं । यही नहीं बेकार बाकार हो गए हैं ठेकेदारों की चाँदी-हो-चाँदी है । कहीं तक कहीं खोरबाजार करने वालों ने भी अपनी मिसमसारी और मेहमाननवाजी से लाखों के बारे-म्यारे कर बामे हैं !

० क्या आप समझत हैं कि मेरे मन में ऐस कोई घरजाव

महीं हूँ ?

हूँ । जरूर हूँ । पर भाई मेरे, मैं कुछ अपनी, और कुछ अपनी 'उन'की पकी हुई, मामी सुनहसी आदतों से मजबूर हूँ ! हाँ ऐसे नुस्खे की तलाश में अवश्य हूँ जिससे बिना धारीरिक और आर्थिक कष्ट उठाए, मेहमान की जाति का पूरा-पूरा फायदा उठाया जा सके । आप जानते हों तो बताएँ । नहीं तो भगवान् कभी-भ-कभी सुनेंगे ही ।

नीकर के मारे

“बतुर बुद्ध ने इस काम से घर में अपनी ‘बीबीसल’ मजदूर की है कि अगर हम उससे कुछ कहते हैं तो उसकी ‘बीबीसी’ हमारे सिर होजाती है, और बीबीसी ही कमी उसे डांटने लगती है तो बच्चे घर पर घासमान उठ खेत है । कमी-कमी सोचता हूँ कि वह तो और हुई जो बुद्ध ने पिछले आन्दोलनों में माय नहीं लिया ! सब कहता हूँ कि अगर वह कहीं राजनीति में पढ़ गया होता तो आज कहीं का ‘मिनिस्टर’ हुआ होता !”

हमको ता भगवान् ने नाहक मनुष्य बनाया ! यह भटकी हुई जीवात्मा तो किसी भी पशु-पक्षी के बोले में घासानी से फिट हो सकती थी । भना बताइए, जब मिले मनुष्य का धीर सामना करना पड़े मुसीबतों का ! यह भी कोई बात हुई ?

पर सार, जब सातवें आसमान पर बंठे हुए अस्सासाना धीर कमल की पत्नी डंडी पर घासन जमाए हुए बड़े ब्रह्मा बाबा ने बिना विधान-शास्त्रियों से सलाह लिये हुए भादमी बना ही जाला तो कम-से-कम उन्हें इतनी कृपा तो करनी ही चाहिए थी कि इस ५ फुट ६ इंच के बिना पंख-पुछ वाले प्राणी को धीर सब नियामतें बख्शते पर मेहरबानी करके उसे अक्स तो नहीं ही देनी चाहिए थी । इस छरीब को अक्स क्या मिली, यह समझिए कि सब-कुछ चौपट हो गया !

अब अक्स ने मारे इस भादमी की कोई एक मुसीबत हो तो क्या न की जाय । कोई एक परेशानी हो तो उसका जिक्र भी हो । इस समय तो हास यह है कि इस अक्सवर ने अपने ऊपर बुद्धिमानी का सिहाफ इस कवर सपेट लिया है कि उसकी सही सूरत कहीं मबर हो नहीं पाती !

एक युग था जब वह गुफाओं में आराम से रहता, चिंकार करता और ठाठ से पड़ा-पड़ा सुरटि मरा करता था—न ऊपी ना सैन न मापी का रैन ! पर अक्स जो घाई से सब गूढ़गोबर हो गया ! सम्यता घाई, सोसाइटी घाई, समाज बना और इस्बत भादक की चाह होने लगी । इस सब का परिणाम हुआ कि मकड़ी अपने जास में गुद ही उलझ गई ! अब तो हास यह है कि भादमी समाज से परेशान है, सम्यता से परेशान है और सोसाइटी से

परेशान है ! और-तो-धीर भपने बीबी-बच्चों से मो उसे पैत नसीब नहीं ! परेशानी को इस कहानी का सिमसिला यहीं समाप्त नहीं होता ! आप हीरात होंगे कि जिसे भाव रखा और कम निकाला जा सकता है, उस नौकर के मारे भी भावमी की नाक में दम है !

नौकर और नाक में दम ! आप भी कहेंगे—मई यह भी एक ही रही ! पर यकीन मानिए इसमें तिल-भर भी भूठ नहीं है ! नौकर की परेशानी भाव सबसे बड़ी परेशानी है !

हालांकि सवाई और मंडगाई ने लोगों का कपूर निकाल रखा है और हात पतला क्या करें, करीब-करीब खस्ता होबसा है मगर सटा हाथी भी, आप जानते हैं विटोर होता है ! पुस्तनी रईसी भावमी की क्या कमी जाती है ? कुछ और न हो पर में कम-से-कम एक नौकर तो होना ही चाहिए !

और साहब, आप कुछ भी कहें बिना नौकर के भाव के हम 'अन्टिसर्मेन' काम भी तो नहीं बना सकते ! माना कि एक भाभी आप खुद ही से घाते हैं, और माना कि आपको खुद ही बाजार से सौदा-सुझुफ करने का शौक है, लेकिन यह तो बताइए कि आप कोट-पैन्ट पहनने वाले नरुद (१२५) माहवार के बाहु, क्या पक्की पर खुद घाटा पिसामे खाना मरूर करेंगे ?

मान लिया कि यह काम भी आप साइकिल के कैरियर पर कनस्तर टिकाकर, चारा गर्दन मुकाकर घासानी से कर लेते हैं और मान लिया कि क्लाय राशन की दुकान से कपडा आपकी श्रीमतीजी खुद ही आपसे भाव सब्जियाँ से घाती हैं, और यह भी माना कि हफ्ते का राशन भी आप नमक-मिर्च की तरह घासानी से भोले में दबा घाते हैं, लेकिन यह तो बताइए, उस एक बोटम मिट्टी के सेस के लिए कनस्तर पकड़कर आप दोनों में से कौन तीन घंटे एक साहन में लगने को तैयार है ? जहाँ तक मेरा सवाल है मैं तो अन्धेरे में राम नाम अपना क्यादा पसव्य करूँगा, बजाय इसके कि श्रीमतीजी से इसकी बर्बा कहे और अपनी घामस को खुद ही दावत दूँ ! मेरे घारे

मैं तो आप हमेशा के लिए ध्यान रखिए कि मैं तो १०० घों फूट घाने पर ही किसी काम के करने को राजी होता हूँ नहीं तो अपना धावध तो यह है

धजपर करें न चाकरी पंजी करें न काम ।

बास (नहीं ध्यास) मलूका कह पए सबसे बज्जा राम ॥

फिर आप ही बताइए कि हम-जैसे दो-चार मार-दोस्त जब आपके यहाँ दर्शन देने छुद ही तखरीफ से घाएँ तो भसे धावमी होने के कारण आप कुछ न सही, उन्हें गरम पानी पिमाना तो अपना फ्रबे समझेंगे ही ? अब बताइए कि उस समय आप क्या खुद ही काकरी माफ करोगे और पूष अस्म होगया तो मेहमानों पर सूना घर छोड़कर खुद ही दौड़े-दौड़े बाजार जाएंगे ? कभी नहीं । उस समय तो आपको मेरी ही तरह मेज पर टाँगें फेंसाकर 'बुद्धा' को ही धावाज देना अधिक पसन्द आया ।

या छोड़िए, इस २०वीं सदी में दोस्तों को आप क्यावा मुँह सगाना पसन्द नहीं करते, लेकिन मुझे पूरा बिस्वास है कि आपकी धीमतीजो आपके इस धावध के पीछे अपनी सहेलियों को नहीं छोड़ सकती । 'बे' उनके यहाँ ठाठ से जाएंगी और उन्हें अपने यहाँ सादर बुसाएंगी भी ! जहाँ तक धीमतीजी का सम्बन्ध है, आप बसा से फटे-हास रहें मगर 'बे' घर से बाहर, सास तीर पर सहेलियों या रिस्तेदारों के सामने अपने 'स्टैन्डर्ड' को तनिक भी गिरा हुआ बर्दास्त नहीं कर सकती ।

अब आप खुद पसन्द कर लीजिए कि जब 'बे' अपनी सहेलियों क यहाँ जाने लयें तो फस-मिठवाई की टोकरियों के साथ छाटे मुन्ने को सभासमे के लिए आप एक सेबक की धावत्यकता धनुमध करते हैं या ऐस माजुक मौके पर खुद स्वयंसेबक बन सकने की हिम्मत आप में है ?

तो इन्ही महासकटों से पार पाने के लिए हमने अपने यहाँ बाबू बुद्धिसेन बनाम बुद्धा को, नीकर क्या बहें, मानिक रस

छोटा है !

बुढ़ा साहब जब भाए भाए थे तो इनकी सेवा-बाकरी का क्या कहना ? पहले उठना, बाद में सोना कम खाना और जो वे दें उसीमें मगन रहना ! कोई एक खूबी हो तो कही भाय ? काम करने में जुस्ती और मुस्ती तो इस कदर थी कि कहे पर काम किया तो क्या किया ? इशारों पर नाचते थे, इशारों पर !

कुछ ही दिनों में हजरत हमारे परिवार के भंग बन गए । हम उन पर प्रसन्न रहने लगे । उनकी 'बीबीबी' का पुसारा उन्हें प्राप्त हो गया । बच्चे उनसे हिल गए । हमारे घर-बाहर की कुंजी उन्हें मिल गई ।

यह समझिए कि हम बुढ़ा के भरोसे निश्चिन्त होगए । लेकिन जिस दिन से हमारी निश्चिन्तता की बात बुढ़ा की बुद्धि में भी भा गई बस, उसी दिन से वह भी हम से निश्चिन्त होगया ।

बुढ़ा ने घोटी छोड़कर पाजामा धपनाया तो हम खुश हुए, और जब उसने हमारी घघबरती पतसून पर भी एक दिन हाथ साफ किया तो हमने तिसा नहीं किया । लेकिन जब उसने एक दिन यह कहा कि बाबूजी २०) में मेरा काम नहीं चलता या तो ३५) कीजिए, नहीं मुझे किसी और को बाबूजी कहना पड़ेगा तो हमारे कान एकदम बरगोश की तरह सड़े होगए ।

पर क्योंकि बुढ़ा के बिना हम धपंग थे, इसलिये जैसे मीथी बिल्सी चूहों से कान बटाती है, वैसे ही हमने धुपचाप ३०) पर समझौता कर लिया और पुण्य झूटने की खातिर अपने मन में यह भी सोच लिया—आखिर २०) से आबकम होता मी क्या है ?

लेकिन बुढ़ा कोई बुद्धू तो है नहीं ! वह फौरन हमारी लस पहचान गया ! अब तो वह कम्बल काम के दाव से ही नहीं जाता । दो-दो, तीन-तीन धावाओं पीजाना तो उसके बाएँ हाथ का खेल है । चौपी-पाँचवीं धावाज पर मी सधियस हुई तो हाकिर हुआ, और नहीं हुई तो जैसे हमारे घरों में स्त्रियाँ फकीरों को

'हाथ लामी नहीं हैं' कहकर टास देती हैं, वैसे ही बाबूजी ने आवाज दी तो 'बीबीजी का काम कर रहा हूँ', और बीबीजी ने आवाज दी तो 'बाबूजी का काम कर रहा हूँ' कहकर वह टास बताता है कि कुछ कहते नहीं बनता !

बतुर बुढ़ा ने इस कमाल से घर में अपनी पोन्डीशन भजकूत की है कि अगर हम उससे कुछ कहते हैं तो उसकी 'बीबीजी' हमारे सिर होजाती है और बीबीजी ही कभी उसे डाटने लगती है तो वच्चे घर पर आसमान उठा सेते हैं । कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि वह तो खैर हुई, जो बुढ़ा ने पिछले आन्दोलनों में भाग नहीं लिया । सच कहता हूँ कि अगर वह कहीं राजनीति में पड़ गया होता तो आज कहीं का 'मिनिस्टर' हुआ होता ।

अभी पिछले दिनों की बात है । चार दोस्त घर पर आ गए । हमने बुढ़ा से कहा, "आ, पानी गरम करने को रक्त बे और अपनी बीबीजी से बोस कि साथ के लिए कुछ फूर्ति से तैयार कर दें ।"

बुढ़ा को शायद उस वक्त सिनेमा जाना था । उसे मे-वक्त की यह आतिरदायी पसन्द नहीं आई । बोसा, "बाबूजी, पानी तो अभी रखे देता हूँ पर बीबीजी की तबियत आज कुछ ठीक नहीं है ।"

मैं जानता था कि उनकी तबियत को कुछ भी नहीं हुआ । पर बुढ़ा से क्या कह सकता था बोसा, "आ, देख तो सही, तबियत ठीक है ।"

दो दोस्तों की तरफ मुँह करके निहायत मना आदमी-सा बन कर बोसा, "बाबूजी तो घर की बिसकुस परवाह नहीं करते । कई दिन से उनकी तबियत खराब बन रही है । पर वह तो यों कहो कि बीबीजी साक्षात् सदमी का भवतार है, जो किसी से कुछ कहती सुनती नहीं । आज जब विलकुल तबियत गिर गई है तो क्या करें ? इस कदर सिर में दब और हारत है कि मैं कुछ कह नहीं सकता ।"

दोस्त लोग आप को बून गए और उसटा मुझे ही सस्त-मुस्त



पाएर बाबू बुजमेन माप क्यो वकलीफ कालेहि । यहाँ बिराजिए ।
 लीबिए, जल पीबिए ।" (पृष्ठ ४२)

'हाथ लाम्पी नहीं हैं' कहकर टास बेती हैं वैसे ही बाबूजी ने धावाज दी तो 'बीबीजी' का काम कर रहा हूँ' और बीबीजी ने धावाज दी तो 'बाबूजी का काम कर रहा हूँ' कहकर वह टास बताता है कि कुछ कहते नहीं बनता !

चतुर बुढ़ा ने इस कमास से घर में अपनी पोखीयन मजबूत की है कि अगर हम उससे कुछ कहते हैं तो उसकी 'बीबीजी' हमारे सिर होजाती है और बीबीजी ही जमी उसे डाटने समझी है तो घण्टे घर पर आसमान उठा सेते हैं। कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि यह तो और ठुई, जो बुढ़ा ने पिछले प्रान्दोलनों में भाग नहीं लिया। सच कहता हूँ कि अगर वह कहीं राजनीति में पड गया होता तो प्रायः कहीं का 'मिनिस्टर' हुआ होता।

अभी पिछले दिनों की बात है, चार दोस्त घर पर आगए। हमने बुढ़ा से कहा, "आ पानी गरम करने को रख दे और अपनी बीबीजी से बोल कि साथ के लिए कुछ फुर्ती से तयार कर दें।"

बुढ़ा को शायद उस वक्त सिनेमा खाना था। उसे बे-बल की यह सातिरदारी पसन्ध नहीं आई। बोसा, "बाबूजी, पानी तो अभी रखे देता हूँ, पर बीबीजी की तबियत प्रायः कुछ ठीक नहीं है।"

मैं जानता था कि उनकी तबियत को कुछ भी नहीं हुआ। पर बुढ़ा से क्या कह सकता था, बोसा, "आ, बेस तो सही, तबियत ठीक है।"

तो दोस्तों की तरफ मुँह करके मिहायत मसा आदमी-सा बन कर बोसा, "बाबूजी तो घर की बिलकुल परवाह नहीं करते। कई दिन से उनकी तबियत खराब भस रही है। पर वह तो मों नहो कि बीबीजी साक्षात् सखी का प्रबतार हैं जो किसी से कुछ कहती सुनती नहीं। प्रायः अब बिलकुल तबियत गिर गई है तो क्या करें ? इस कदर सिर में दर्द और हृदय है कि मैं कुछ कह नहीं सकता।"

दोस्त लोग चाय को भूल गए और उलटा मुँहे ही सख्त-सुख्त



“भाइए बाबू बुडमेत घाय क्यौं तकलीफ करलेहैं । यही बिराजिए !
बीजिए, जल पीजिए ।” (पृष्ठ ४२)

‘हाथ लाम्बी नहीं हैं’ कहकर टास बेटी हैं, वैसे ही बाबूजी ने धावाज दी तो ‘बीबीजी का काम कर रहा हूँ’, और बीबीजी ने धावाज दी तो ‘बाबूजी का काम कर रहा हूँ’, कहकर वह टास बताता है कि कुछ कहते नहीं बनता !

चतुर बुढ़ा ने इस कमास से घर में अपनी पोलीशन मजदूर की है कि अगर हम उससे कुछ कहते हैं तो उसकी ‘बीबीजी’ हमारे सिर होजाती है और बीबीजी ही कमी उसे डाटने लगती है तो बच्चे घर पर आसमान उठा भेते हैं। कमी-कमी मैं सोचता हूँ कि वह तो सैर हुई, जो बुढ़ा ने पिछले आन्दोलनों में भाग नहीं लिया। सब कहता हूँ कि अगर वह कहीं राजनीति में पड़ गया होता तो आज कहीं का ‘मिनिस्टर’ हुआ होता !

अभी पिछले दिनों की बात है, चार दोस्त घर पर आए। हमने बुढ़ा से कहा “आ पानी गरम करने को रख दे और अपनी बीबीजी से बोल कि साय के लिए कुछ फूर्ति से तैयार कर दें।”

बुढ़ा को धामद उस बच्चे सिनेमा जाना था। उसे बे-बच्चे की यह छातिरदारी पसन्द नहीं आई। बोला, ‘बाबूजी, पानी तो अभी रखे बैठा हूँ, पर बीबीजी की तबियत आज कुछ ठीक नहीं है।’

मैं जानता था कि उनकी तबियत को कुछ भी नहीं हुआ। पर बुढ़ा से क्या कह सकता था, बोला, “आ, देख तो सही, तबियत ठीक है।”

तो दोस्तों की तरफ मुँह करके निहायत भसा धावमी-सा बज कर बोला, “बाबूजी तो घर की बिसकुल परवाह नहीं करते। कई दिन से उनकी तबियत खराब चल रही है। पर वह तो यों कहो कि बीबीजी साक्षात् शक्ती का अवतार है, जो किसी से कुछ कहती सुनती नहीं। आज जब बिसकुल तबियत गिर गई है तो क्या करें ? इस कदर सिर में दर्द और हरायत है कि मैं कुछ कह नहीं सकता।”

दोस्त लोग आयाको घुस गए और उमटा मुँहे ही सस्त-सुस्त



“भाइए बाबू बुद्धमेन घाय क्योँ तकलीफ कछेहूँ । यहाँ बिठबिए ।
लीबिए, बत्त पीबिए ।” (पृष्ठ ४२)

नीकर के मारे

कहने लगे। बेचारे अपना-सा मुँह लेकर सौट गए। मुझे ऐसा गुस्सा आया कि बुढ़ा को अभी गोभी मार दूँ। तभी श्रीमतीजी कहने लगी 'रहने भी दो प्राणिर अपना क्या बिगड़ा मँहगाई के समाने में कुछ बचाया ही तो।'

मुँहसाकर कई बार सोच चुका है कि इसे जवाब दे दिया जाय। पर जब-जब यह नबाल उठता है तब-तब प्रक्सर घर की 'केबिनेट' में फूट पड़ जाती है। जब कभी पति होने के नाते मैं अपने 'बीटो' का प्रयोग करना चाहता हूँ तो सोचता हूँ कि प्राणिर नीकर के बिना भी तो काम चस नहीं सकता। न जाने कौन कौसा भाए और भाए-ही-भाए इसकी क्या मारप्टी है ?

फिर बुढ़ा की खूबियों का भी क्यास घाता है। वह सब-कुछ हो, खोर नहीं है। उसे ऐतरास तो छू भी नहीं गया। 'पीर, बावर्ची, मिरती सर' वाली जो कहावत है, सोचता हूँ—वह बुढ़ा जैसे लोगों को बेसकर ही ईजाद हुई होगी।

पर क्या कहूँ आजकल बुढ़ा के पर निकम भाए हैं। कामखोर तो क्या वह मौजी होगया है। बिसकुस ऐसा जैसा हिन्दी का कसाकार। उसके मन में भाए तो फोन्डू के बल की तरह दिन भर सगा रहे और मन में न भाए तो बुखार का महाना करके वह सम्यो ताने कि कुम्भकरण भी माठ सा जाए। कहो तो उससे बाहे जो कहे आओ गीता के स्थितप्रज्ञ की तरह सुनता रहे और चेहरे पर एक चिकन भी न घाने दे और न कहो तो वह कम्युनिस्ट बन जाय कि मारे तर्क-कुतर्कों के आपबा बोस यन्द कर दे। कभी तो आपको वह इतजठ बसो कि आप घोड़ों डेर के लिए लुद को दूसरा पह्याह समझने लगे और कभी ऐसी फिरफिरी करे कि आपको कहीं मुँह दिखाने की भी गुँजायश न रहे।

घब आपसे क्या कहूँ ? हाल यह है कि न उसे निकाले बन है, न रहे बन है। और वह भी भला प्रादमी न जाने का नाम सेता है और न डग से रहने की ही बाठ करता है। चायद यह जो कहावत है कि 'मुम्बो और न तुम्हो डोर', वह हमारे बुढ़ा के मानसे में सोलहों घाने सही है।

धन्ने-रोजगार आपने बहुत देखे-सुने होंगे, लेकिन जिस धनूठे व्यवसाय की तरफ मैं इशारा करना चाहता हूँ, वह ऐसा साजबाज है कि दुनिया में उसकी मिसाल ढूँढ़े नहीं मिल सकती !

सोने-चाँदी के सट्टे से लेकर गमक-मिर्चे की दूकानवाली तक जितने भी धन्ने आज प्रचलित हैं, उन सब में षोड़ी-बहुत पूर्वी की भावश्यकता होती ही है । लेकिन जिस रोजगार के बारे में मैं अभी आपसे जिक्र करूँगा, उसमें पूर्वी की बिलकुल ही भावश्यकता नहीं । सचाई तो यह है कि पूर्वी का होना ही इस रोजगार को उलटा हानि पहुँचा सकता है ।

कोई काम लेकर बैठिए, एक ठीया तो बाहिए-ही-बाहिए । मठ सब यह कि दूकान या गोदाम हो, आफिस या कमरा हो । लेकिन आप जानते हैं कि आजकल धून्ने पर माम मिल सकता है, भागने पर बहादुरी मिल सकती है, मगर रहने को मकान कहीं नहीं मिल सकता । पर बाहू रे मेरे नए रोजगार ! इसमें आपको किसी किस्म के मकाम, दूकान या साइनबोर्ड की कतई भावश्यकता नहीं । बिना किसी 'मेटरहेड' या सिफरके के, आपकी खतो-किटाबत जारी रह सकती है और बिना 'क्रेसमीमो' काटे, आप इस नए बाजार में सलूकार हो सकते हैं ।

यहाँ इस बात की भी भावश्यकता नहीं कि आप टीमटास से रहें और कुछ पड़े-मिले-से भी दिखाई दें । यह रोजगार तो बन्द बतुरों ने वह कमास का निकाला है कि आप जितने अधिक फटे-हास होंगे, जितने अधिक धस्त-भ्यस्त दिखाई देंगे और जितनी अधिक घटपटी या बेतुकी बात कर सकेंगे, उतने ही अधिक मुनाफे में रहेंगे ।

मजाक नहीं करता । मेरी बातों को आप ऐसबिल्लीपन न

गीत सिखें तब यह प्रबन्ध समझ लें कि इसे पढ़ने वाले सब-के-सब प्रशानी नहीं तो कम-से-कम आपसे तो कम-बकल जरूर ही हैं, और कुछ न सही, उनके पात्रानान्धकार को दूर करने के लिए ही आपका लिखते रहना बढ़ा जरूरी है। प्रावश्यकता इस बात की भी है कि जब आप अपनी प्रशंसा रचनाएँ सुनाएँ तो सुनने वाला भाई एक हो या हजार, आपके हाव-भाव और स्वर में फर्क नहीं पड़ना चाहिए। यही नहीं, आपको हर समय यह बोध रहना चाहिए कि सारा समाज तृणवत् है और यदि किसी चीज की प्रहमियत है तो उस अपने प्रहम् की।

कविता लिखने के लिए यह बिसकुल आवश्यक नहीं कि आप विंगस पड़े हों या आपने रीति-प्रसंकारादि का अध्ययन किया हो अथवा नये-पुराने कवियों की सोहबत ही उठाई हो। प्रावश्यक सिर्फ यह है कि ऐसी पंक्तियाँ, चाहे तो आप स्वयं जोड़ सकते हों, या धरर सुमीता और पकड़े जाने का सतय न हो तो बूझों की भी से सकते हों कि जिनसे तालियाँ बज सकें।

बस, तालियाँ पिटना ही आपकी सफलता की चरम कसौटी है ! वह नेता ही क्या कि जिसके भाषण में तालियों की गड़गड़ाहट से शानियाने न उखड़ जाएँ, वह नर्तकी ही क्या जो पिटाते-पिटाते दर्शकों के हाथ मास न करवे और वह कवि भी क्या जिसकी कविता पर धुआस न आए, हैगामा न होजाए !

तालियाँ बजवाने का भी अपना एक अलग 'आर्ट' होता है। कवि-सम्मेलनों में तालियाँ बही अधिक पिटना सकता है, जिसने राम कृपा से कसा से अधिक गसा पाया हो, जो कवि से अधिक जो एक्टर हो, धारबत से अधिक सामयिक हो धौदिक से अधिक रसिक बनने की कोशिश में सफल होगया हो !

क्या कसा और क्या गसा ! हम तो यह मानते हैं कि ये सब चीजें धारमबिश्वास के बलीमूत हैं। मेरे पास कसा और गसा मानने का एक रामबाण उपाय है ! वह यह है कि आप

पीठ सिखें तब यह भवस्य समझ में कि इसे पढ़ने वाले सब-के-सब धरमानी नहीं तो कम-से-कम आपसे ता कम-बकस जरूर ही हैं, और कुछ न सही, उनके धारानाम्यकार को दूर करने के लिए ही आपका निश्चय रहना बड़ा जरूरी है। धारधर्मकता इस बात की भी है कि जब आप अपनी धनमोल रचनाएँ सुनाएँ तो सुनने वाला चाहे एक हो या हजार, आपके हाव भाव और स्वर में फर्क नहीं पड़ना चाहिए। यही नहीं, आपको हर समय बह बोध रहना चाहिए कि सारा समाज पणवद् है और यदि किसी चीज की महमियस है तो बस अपने महसू की।

कविता लिखने के लिए यह बिसकुस धारस्यक नहीं कि आप पियस पढ़े हों या आपने रीति-धसकारादि का धस्ययन किया हो, धसवा नये-पुराने कवियों की सोहबत ही उठाई हो। धारस्यक सिर्फ यह है कि ऐसी पकियाँ, चाहे तो आप स्वयं जोड़ सकते हों, या धसर सुभोठा और पकड़े जाने का कतरा न हो तो दूसरों की भी से सकते हों कि जिनसे तासियाँ धस सकें।

बस, तासियाँ पिटना ही आपकी सफलता की धरम कसौटी है। बह मेता ही क्या कि जिसके धारण में तासियों की गड़गड़ाहट से धामिमाने न उखड़ जाएँ, बह नर्तकी ही क्या जा पिटाते-पिटाते धसकों के हाव भास न करदे और बह कवि भी क्या जिसकी कविता पर सुभाल न आए, हँगामा न होजाए।

तासियाँ धसवाने का भी धपना एक धसग 'धार्ट' होता है। कवि-सम्मेलनों में तासियाँ बही धधिक पिटाता सकता है, जिधने राम ध्या से कसा से धधिक यसा पाया हो, जो कवि से धधिक जो एक्टर हो, साश्बत से धधिक सामयिक हो, धौधिक से धधिक रसिक धनने की कोधिस में सफल होयमा हो।

क्या कसा और क्या गसा। हम तो यह मानते हैं कि ये सब चीजें धारमविस्थास के बसीभूत हैं। मेरे पास कसा और गसा मांजने का एक रामबाण उपाय है। बह यह है कि धाप



‘भाप मेरी तरह एक धारमकर घाटना अपनी। बैठक में लगाए, कविता
 लेकर उसके सामने बड़ी घान से लजे ही जाइए और समझ लीबिए कि घर में
 ही कवि-सम्मेलन होखा है।’ (पृष्ठ ४६)

दूर किसी जगम में, एक पक्के कुँए में, पैर सटकाकर बैठ जाइए । सिर झुकाकर उस देवता को प्रणाम कीजिए और कहिए भा SSS ! वस, उत्तर में कुँआ भी आपसे बहेगा, "भा SS प्यारे भाई, भा SS !" इस प्रकार सगाठार कुँए में मुँह देकर आप स्वर-सघान किए जाइए और उस धनेष्टे कुँए को अपने स्वर-वाणों से भर दीजिए । थोड़ी ही देर में यक्रीन मानिए, आपको विश्वास हो जाएगा कि सबकुछ आपकी आवाज में भी बड़ा दम है और सहगल तो मर ही गए अब दूसरा कौन है जो आपसे बाजी ले सके ! आपको लगेगा कि कुँए की आवाजों से सगीस की सहर्से-सी फूट रही हैं उन सहर्से से श्वापै-सी निकल रही हैं, उन श्वापों से कुछ अर्थ से प्रतिभासित हो रहे हैं और उन अर्थों को व्यथ करने की सामर्थ्य किसी भी कर्महीन आलोचक में नहीं है ।

अगर आपके पासपास कोई कुँआ न हो और उसमें डूब मरने का खतरा भी आपके सामने हो तो फिर आप मेरी तरह से एक आदम-ऊद पीछा अपनी बैठक में सगाइए । कविता लेकर उसके सामने बड़ी शान से खड़े होजाइए और समझ लीजिए कि घर में ही कवि-सम्मेलन हो रहा है ।

इस प्रकार की साधना के बाद निश्चय ही आपको यह विश्वास होजाएगा कि आपमें कवि बनने की वह सब सुबियाँ हैं जो वास्मीकि या व्यास में थीं, मास या कालिदास में थीं सूर या तुससीदास में थी । आप जानते ही हैं कि आरम्भविश्वास दुनिया में बहुत बड़ी चीज है । जिस दिन आपको यह विश्वास होगया कि आप कवि हैं वस उसी दिन समझ लीजिए कि दुनिया की कोई शक्ति आपको कवि बनने से नहीं रोक सकती । एक मही साख बनारसीदास या रामविशास आपके पीछे पड़े करोड़ों कालिदास के सड़के आपका भजाक बनाएँ, हजार ईर्ष्यासु आपको तुक्कड़ कहें मगर कोई आपका कुछ नहीं बिगाड सकता ।

हाँ, आपको मयेपन के पीछे अवश्य दीड़ना पड़ेगा ताकि लोग

वह कह सकें कि यात कुछ सुन्दर और समूहपूर्व तो है, लेकिन वह सुन्दरता और नयापन दूरबीन से देखने पर भी दिखाई न पड़े। तो मैंने कहा जितनी भी झटपटी अमरकारिक बेतुकी और मुक्त याणी भाषा कह सकते हैं, भाषा उतने ही बड़े कवि करार दिए जा सकते हैं।

अब भाषा धायद यह कहने लगे कि यह तो बड़ा आसान है। मान लीजिए हम कवि बन गए, मगर इसमें रोजगार कहाँ है? यह तो बेकारी का धन्धा है, जनाब!

तो मैं कहूँगा कि श्रीमानजी यह जनामा तो सब गया कि जब ससीसलाई फ्रास्ता उढाया करते थे अब तो कवियों की खाँदी-ही खाँदी है। इस पिछसी सड़ाई में जो बहुत-से उद्योग-धर्मों का विकास हुआ है उनमें एक कवि-सम्मेलन का रोजगार भी है जो बड़ी तेजी से फैल रहा है और बनप रहा है, और क्योंकि इस धोर धमी भारत के बड़े-बड़े उद्योगपतियों की निगाह नहीं गई है इसलिये धमी इसमें छुटमध्यों को मुताफ़ा-ही-मुताफ़ा है।

आजकल यह रोजगार पूरी तेजी पर है। किसी की जयन्ती हो या कोई कहीं स्वर्गलोक जा पहुँचा हो। कहीं किसी वीर प्रसविनी ने बायर को जन्म दि ग हो या किसी नानकध्व के नाक-कान छेदे जा रहे हों। मारवाडी मित्र-मण्डल का बससा हो या धर्मकारों ने धपनी चौदस मनाह हो—बायक्रम में भाषको कवि-सम्मेलन प्रवच्य दिखाई दे जाएगा।

कवि-सम्मेलनों के लिए भाषको चाहिए भी क्या? बस एक जोड़ी पोछाक और एक जोड़ी कविता। इन्हीं दो जोड़ियों के बल पर भाष कवि-सम्मेलन का वगस फतह कर सकते हैं। वगस फतह होगया तो ठीक है ही नहीं पीस-बिचया तो पिट जाने पर भी मिस जाता है। अगर कहीं तालियाँ खोर से पिट गईं तो फिर इनाम इनराम लीजिए, मेहन-दुघाले लीजिए और अगर कोई धानि का धया और गाँठ का पूरा फँस जाय तो बस, जनम-भर गौत्र किए

जाइए ।

अगर कोई तकनीर का बन्दा न भी फँसे तो भी क्या हब है ? आप दूसरों के नाम से कविता लिखिए, करारे पसे मिसेंगे । छादियों के सेहरे बनाइए, मामा आएगा । कविता पुस्तकों को दानियों को समर्पित कीजिए, अच्छी रकम हाप सगेगी । सबसे ऊपर यह कि एक किताब छपाकर सिनेमा या रेडियो में ल दौड़िए, बस स्टार बन जाएँगे और नौसिखियों से खपया ऐंठने का एक अच्छा साधन प्राप्त हा सकेगा ।

लेकिन एक बात याद रखिए । करिए चाहे कुछ, रोजगार आपका तमी फूले-फसेया, जबकि आप कहते यह रहें—हम तो सर-स्वती के सेबक हैं । हमें सठमी से क्या लना । फिर देखिए, चाँदी आपके पास स्वयं सिन्धी पसी घाती है या नहीं ?

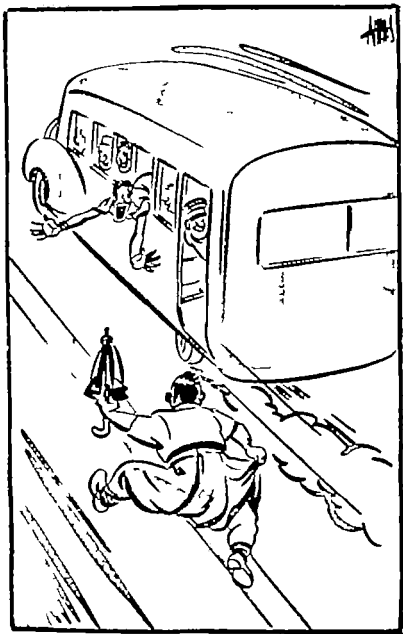


बस की सवारी

“नाम ही इसका मछ किसीने छांटकर ‘बस’
 रख डीठा है। बानी बस कबरघार ! धीड़े-धीड़े घाइए,
 घंटों साइकल में लये रहिए, फिर भी इत बात का कोई
 भरोसा नहीं कि बैठने को तो क्या लटकने को भी
 बयह मिल ही जाएगी !”

नाम ही इसका बस किसीने छूटकर 'बस' रख छोड़ा है । यामी बस समचार ! बोड़े-दोड़े धाड़ए, चप्टों साइन में लगे रहिए, फिर भी, इस बात का कोई मरोसा नहीं कि बैठने को तो क्या, सटकने को भी जगह मिला ही जाएगी । हर बकत इस बात का सारा सिर पर सवार रहता है कि न मासूम कब 'कम्बकटर' महोदय भौंगुली उठाकर कह बैठें— 'बस बस' में जगह नहीं रही !

यह समझ लीजिए कि राम-रूपा से कोई ३४ ३५ वर्ष की उम्र होने आई हमने तो ऐसी कोई बेसब्री की सवारी देखी नहीं ! बचपन में अपने गाँव से यही कोई दो-दो घाने में बैठकर चौदह चौदह मील दूर बाहर भाया करते थे । इसके की सवारी भी क्या रईसी सवारी होती थी—धूँ धूँ, चर-धूँ, छुन्न-छुम्म छुन्न-छुम्म ! ऐसी मस्तानी नाम से इन्का चलता था कि यदि आजकल के किसी कवि को धन्येरे में उसकी ध्वनि सुनाई दे जाती तो सचमुच वह यही समझ बैठता कि कोई बिधुबदनी मृगशावक सोचनी, कहीं पनघट पर तो नहीं जा रही ? धीरे सिर्फ़ दो घाने में, उस इसके पर अपना एकाधिकार कितना होता था कि रास्ते में जहाँ कहीं कोई कुंभा या प्याऊ बेची तो फौरन हुबन घड़ा लिया 'इन्के वाले जरा रोकना भाई !' जते का लौट देना तो उठर पड़े । गाजर-सूमी या मटर-टमाटर मजूर आए तो इन्का रुकवा लिया । कोई मछु-दीर्घ धंका हुई तो वह भी निवारण की । लेकिन भव ? जमाय इस नए जमाने में एक घापकी 'बस' की सवारी है कि हम चप्टों उसके इन्तजार में 'साइन' में लगे रहें इसका तो कोई एहसान नहीं, मगर यथकिस्मती से 'बस' के सरटि में अगर हमारा बेग़ सिसक जाता है, या सोसा कैप उड़ जाती है, या, भगवान न करे, हम रह जाते हैं धीरे हमारी देबीजी बैठ जाती है, तो कम्बकटर की घाप सास बुझामद कीजिए, वह महालय रुकने



“हम खू जाते हैं और हमारी बेबीजी बैठ जाती है !” (पृष्ठ २४)

का नाम भी लेने वाले नहीं। हमीलिए तो कहता हूँ कि घोर की तो क्या बसो हम जैसे भले प्रादमियों के लिए तो 'बस' पकड़ना भी एक मुसीबत का काम है।

जी हाँ, मुसीबत का काम है। वह इस तरह कि क्या हुआ कि हमारी गाँठ में टके नहीं हैं और हम एक दफ्तर में बसकें जैसी कोई नौकरी करते हैं, लेकिन कहनाते तो वाबू हैं। और हम न सही हमारे सामदान वाले तो रहस्य वे ही—और हिन्दुस्तान में ऐसा कौन है या सामदानी रहस्य न हो? तो श्रीमानभी हम सबेरे उठते उस समय है जब श्रीमतीभी पत्नीभी में दास चढ़ा देती है, और नहाते उस समय है जब बासी की रोटियाँ ठंडी होने लगती हैं। इसी तरह घाप सोच सकते हैं कि 'बस-स्टैंड' पर हम कब पहुँचते होंगे?

अगर हमें बड़े बाबू की मुट्ठी का कोई खतरा न हो ता पहलो से न सही घुमपी से दूरो से न मही तीसरी से घांसिर 'लघ टाइम' तक सरामा-सरामा दफ्तर पहुँच ही सकते हैं। लेकिन पता नहीं हमारे बड़े बाबू बाल-बन्धे वाले नहीं हैं, या मगवान ने धाराम जनकी तकदीर में ही नहीं लिखा कि यह न जाने हमारी तरह से क्यों नहीं सोचते, और हम जैसे शरीफ लोगों को भकाएण ही पूर पूरकर क्यों देखते रहते हैं?

तो यह समझ सीजिए कि उसी बकहटि का खयाल रखते हुए ही 'बस' वालों का मुँह ओहना पडता है कि माई जरा टाइम पर पहुँचा दिया करें। हाँ, दूर से घाते देखें तो रुक जाया करें और सीट न होमे पर भी हमें कहीं-न-कहीं टिका-सटका सिया करें। लेकिन ये बस' बाने हैं कि जैसे मुरखत का पाठ इन्होंने पढ़ा ही नहीं। हम भिन्नतें घोर धारजू करते ही रह जाते हैं, लेकिन 'बस' है कि जैसे सट्टे में सखमी बिसक जाया करती है बस, उसी तरह 'बस' भी हमारे देखते-देखते भाँखों के घागे से सरक जाया करता है।

अमी कस की बात है १०॥ होगए वे। अपने राम अपनी सुस्ती और मस्ती पर सीम्छे-पीम्छे 'बस' की मोर सपक रहे वे।

वहाँ पर पहुँचते ही क्या देखते हैं कि कोई वीम भावमी एक साथ एकले दरवाजे के घन्दर घुसने की जी-तोड़ कोशिश कर रहे हैं। अच्युता गामा एक मस्नयुद्ध-ना होरहा है। किसीकी पगड़ी उतर कर लम्बी होगई है तो किसीका कोट सीवन से चटक रहा है। नौजवान बूढ़ों को डबेस रहे हैं और बूढ़े कह रहे हैं, 'देसो हमारा भी पानी ! हमने जितना पी पिया है छोकरो उतना तुम्हें पानी भी मसीब नहीं हुआ होगा।' कोई नीचे से घुस रहा है तो कोई ऊपर से छसांग मारने की कोशिश में है और कोई पतरा बदस कर बयस से हाथ मारना चाहता है। उस दर्शनीय दृश्य का ठीक-ठीक बर्णन नहीं किया जा सकता। आपने शायद एक बंस देखा होगा। सोग बन्दरों के बीच में एक गुड की भेसी रस देते हैं और उसके घास-पास १०-२० इण्डे विलेर देते हैं। तो जिस तरह उभ एकैमी गुड की भेसी के पीछे घन्दरों में दत-किटाकिट होती है ठीक वही हास उस 'बस' का था। अगर कोई अजनबी देखता तो यही सोचता कि शायद इसमें कोई चाँदी की सिम या रुपए बिलारे पड़े हैं कि जो पहले पहुँच जाय वही हाथ मार ले।

अगर शहर में कहीं दंगा होगया होता या 'कफ्यू लगने वाला होता और यह घासिरी 'बस' हाँती तो मा इस भक्कन-भक्के की बात कुछ समय में घाती, लेकिन सरे-बाजार, दिन के १०॥ बजे पुलिस स्टेशन के पास चीराहे के सिपाही स चार कमर पर जब यह घटना घटती है तो यत्नाएँ, आप क्या सोच सकते हैं ?

लेकिन आप जानते हैं कि कहने की बात और होती है और करने की और ! हापी के खाने के दाँत और होते हैं, दिखाने के और ! हमने भी सोचा कि कोरी घादशाबादिता में क्या सोगे ? अगर यट १०॥ बजे बाली निकल गई तो दूसरी से ११॥ बजे दफतर सगोगे। मा बादा ! हम भी सकर बजरगबसी का माम पिस पड़े और अपनी घादर्शबादिता को यह कहकर चुप कर दिया कि इस 'बस' से जाने का पहला अधिकार हमारा है। हमें अपने अधिकारों

की व्यवस्था करनी चाहिए। जो अपने अधिकारों की रक्षा नहीं कर सकता वह कायर है।

हम दंगल में हुए तो पड़े लेकिन जैसा कि गुसाईं तुलसीदासजी कह गए हैं—

ज्ञानि-ज्ञान जीवन्-व्रत

बल-अपबल विधि हाव।

इस 'महासमर' में विजयी होना कोई हमारे बस की बात थोड़े ही थी। हम तो कृतव्य करने के अधिकारी थे फल हमारे भाग्य में कहाँ था? अपनी पराजय पर हमें अफसोस तो कम न था लेकिन तसल्ली इतनी जाकर थी कि इस मोर्चे से सफलतापूर्वक वापस हटने वाला हम भक्के ही न थे। हमारे साथ कई सम्बन्धी मूर्खों वाले ऊँचे पुट्टों वाले चौड़ी छाती वाले और टेढ़ी टोपी वाले भी थे। हमें तो सिर्फ़ राम इस बात का था कि आज ही जो नए बुने कपड़ निकासे वे उनका इस्तरा-कमफ़ सप-भस होगया हाथ की बड़ी का लीला चटक गया और वह सो मगवान ने खैर की नहीं तो हमारा मनी बेग (हालांकि उसमें वैसे कुछ दस-बारह घाने के ही थे) जाते-जाते बच गया।

आप धायव यह कहें कि यह तो सभारियों का हुसूर है कि वे साइन लगाकर क्यों नहीं लड़ी होतीं? अगर क्यू (साइन) में सड़े हों तो एक भी विकल न उठानी पड़े।

जी हाँ, 'क्यू' की भी सुनिए। यह हिन्दुस्तान है भाई। यहाँ 'क्यू' का 'ब्यू' बरा बर से समझ में आता है। फिर नियम कुछ भी हों प्राथमिकता औरतों को ही दी जाती है। रेल में टिकट इन्हें प्रथम से दिया जाता है। बिब्वे इनके असाग और सुरक्षित होते हैं, 'बस' में इन्हें पहले स्थान मिलता है और आगे बिठाई जाती हैं। यह सब देखकर कमी-कमी यह सोचने को मजबूर होना ही पड़ता है कि हमने तो यह नर-वेह यों ही धारण की! कम-से-कम 'बस' में स्थान पाने के लिए तो हमें पुरुष की वेह की ऊठई भाव-

आपने सास दक्षिण के मन्दिर और उत्तर के देवता देख डाले हों हजार महस मकबरे, क़िले मीनार और भजायवधरों में घाँसें फाड़ी हों फसकल की चौरंगी बम्बई की चौपाटी दिल्ली का चौक चौक और आगरे के ताजमहल पर चाहे आपकी घाँसें फिसल-फिसलकर ही क्यों न रह गई हों लेकिन अगर आपने एक बार भी कभी दफ्तर की दुनिया के दशम नहीं किए, तो समझ लीजिए कि आपका दुनिया देखना बेकार ही गया ।

कहते हैं कि मनुष्यों की यह दुनिया बिघाटा की बुद्धि की उबर कल्पना है सुनते हैं कि बिस्वामित्र की महान सोपडी में भी बड़े बसिष्ठ से उलझकर एक नई दुनिया बना डाली थी दोसल की रोपनी में धन्ये धमरीका को भी धाजकल कुछ भोग नई दुनिया कहा करते हैं, कबि-लखन और पत्रकारों की तो दुनिया निरामी होती ही है—लेकिन यह जो हमारे हर शहर और कस्बे की छोटी बड़ी इमारतों में एक धाजब ही दुनिया बसी हुई है पता नहीं वह किस नये बिस्वामित्र की छायावादी बहक का परिणाम है कि उसने सारी दुनिया पर और उसके विधि-बिघाम पर पानी फेर रखा है ।

बेद, उपनिषद और धर्मशास्त्रों में सासों-करोड़ों वर्ष के प्रयत्न से जिस परम तत्व धात्मा का सूक्ष्म अनुसंधान किया गया और जिसके लिए श्रुति मुनि योगी जी-जीकर भरे और मर-मरकर लिए उसे यहाँ के छोटे-छोटे बसकों ने तारों में फाड़नों में, रजिस्ट्रों और धासमारियों में ऐसे सम्हालकर बन्द कर रखा है कि धात्मा क्या परमात्मा भी धाजाय ता पड़ा ठकपता रहे । सास छीते से बेचारे का उधार ही न हो ।

बडी-बडी धादबत माननाएँ, रस, छन्द और धलंकार—जिनके लिए महाकवि भोग मगजपञ्ची कखे-कखे मर गए, यहाँ हजारों और

मालों की तादाद में 'विम' और 'टीग' किए हुए पड़े हैं। घाजकम के कहानी उपन्यास और नाटक मिलते वालों को चाहे रात रात भर जागते रहने के बाद भी कथानक और पात्र न मिलते हों, पर यहाँ पग-पग पर कथानक और कदम-कदम पर पात्रों और कृपाओं की यह भीड़ भरी है कि बिना पड़े ही प्रेमचन्द के उपन्यासों का मजा आ जाता है।

जी हाँ, जहाँ के लोग औरतों की तरह लड़ें, जहाँ के बूढ़े वृष्यों की तरह दुसकने लगें, जहाँ के मूर्ख पंडितों को मात दें और जहाँ के दुष्ट दवताओं की तरह सिंहासन पर बैठकर उम्हींकी तरह ईर्ष्या और द्वेष में पारङ्गुत हों तो बटाइए, घाप इनमें दिक्कतस्पी सेंगे या इसाचन्द्र बोशी के मनोवैज्ञानिक उपन्यासों से सिर फोड़ेंगे ?

बटाइए गमियों में गुसूबन्द सगाए, पाट पर बन्व गमे का कोट बाटे कुण्डल के नीचे धोली पहमे या कुत्तों पर हूट और घासों में मोटा-मोटा काजस सगाए देसी बाबुओं की त्रिसुवन-मन-मोहनी सौन्दर्य छटा का भ्रमलोकन करेंगे या बेइज बेघड़न, बेसड़न बेगरब, बेमरज बेहरम, बेधरम आदि महाकवियों की रस से बुहबुहानी रखनाए सुनना पसन्द करेंगे ?

गये और घोड़े कैसे एक-साथ ओठे जाते हैं ? बैल और भैंसे की जोड़ी कितनी प्यारी लगती है ? कृत्त बिस्ती पूहे और बकूतर एक साथ कैसे रख जा सकत हैं—यदि यह देखना है तो घाप हिन्दी का कोई छायावादी महाकाव्य न पढ़कर मेरे साथ दफ्तर में घाइए, जैसी घसगतियाँ घापको यहाँ मिलेंगी वसी जैनेन्द्रकुमार के उपन्यासों में भी ढूँढने से न पाइएगा !

हिन्दुस्तान और उसकी समस्याओं को देखना-समझना है तो नाहक घाँधी नेहरू की पुस्तकों में सर खपाते हो ? दफ्तर को देखिए—जैसे भगवान ने धरों-सबों मनुष्य पृथ्वी पर पैदा किए हैं, मगर क्या मजाल कि कोई बूँघट वासी घेंघेरे में भी अपने पति को पहचानने में यत्नती कर बैठे—सब सूरत, स्वभाव और व्यवहार में

एक दूसरे से घलग ! ठीक वैसे ही दफ्तर की दुनिया में दस-बीस नहीं सेकड़ों-हजारों भादमी एक जैसा काम करते हैं, एक जगह उठते-बैठते हैं, एक-सा वेतन पाते हैं, एक-से क्वार्टरों में भी रहते हैं, मगर क्या मनास कि वे किसी एक भी बात पर एकमत हो सकें। कहीं भी उनमें एका हो। सब एक-दूसरे से मिराले घोर प्रतीक ! यही प्रसन्धी हित्बुस्तान है न ?

कोई हाथी जैसा भारी-भरकम तो कोई बिस्कुस ऐसा जैसा रेगिस्तान का ऊँट। कोई थोड़े-जैसा चपस तो कोई टट्टू जैसा धड़ियस ! कोई भेड़िय-जैसा कूँकार तो कोई कूते-जैसा पासतू। कोई बैस की तरह कुतने बासा तो कोई बिसाई की तरह ममाई साऊ करने बासा। कोई चपरासी की खास में घेर तो कोई चक्रसर की खास में गभा। कोई छेला तो कोई मटमैसा। कोई छुप्प तो कोई वापाल। गरब यह कि विधाता ने अपनी फँकटरी में भादमी की प्राति के जितने भी मॉडस तैयार किए हैं, दफ्तर के भजायबधर में उन सबके नमूने भापको तैयार मिसंगे।

हमारे कहने का मतलब यह नहीं कि दफ्तरी लोग हर बात में एक-दूसरे से पूषक ही हैं। कुछ बातें उनमें प्रसाभारण रूप से सामान्य भी हैं, जैसे सब हूड बसकों से उरते हैं, चक्रसरों से बापत हैं, गालियो का गिला नहीं मानते और कुशामद करने में २५) के चपरासी से सेकर २५००) तक के सेकटरी तक समान रूप से समय प्राप्त किए हुए हैं। यह ठीक है कि सुपरिस्टेडेड या मीनेजर के मारे उनकी धोती डीमी होने लगती है और वेस्ट बिसकने लगता है, मगर दफ्तर में उनकी कुर्सी के सामने काम पढ़ने पर प्रदना-से मदमा बसकें भी जरा खड़े होकर तो देखिए, भापके होठ डीसे न बरवे तो नाम नहीं। और क्यों न करवें ? भाप सास समाएँ कीजिए, प्रस्ताव पास करिए, प्रसूस निकामिए, सरकार पर खोर डालिए, यह जानते हैं कि राज की कुंजी भाज नेहरू के हाथ में नहीं उनकी कसम की मोच में है ! यह ठीक है कि घर में बीबी के मारे



कोई हाथी जैसा भारी भरकम तो कोई बिन्दुस तेजा जैसे रेमिस्लान
 का ऊँ ! कोई मोड़े जैसा बपल तो कोई टट्टू जैसा फड़ियल कोई भेड़िए
 जैसा खूबार तो कोई कुत्ते जैसा पासलु !” (पृष्ठ १२)

धीरे बाजार में साहूकारों के मारे उसका रूढ़ना-निकलना दूमर हो रहा है, मगर यह उनकी धरेंसू बातें हैं, इनमें दखल देने का धायको कोई हक नहीं है, बाहर भ्रगर पेंट की खीज खीसी है रोव न मनी हो बाल सन्धे हों चूते न चमकते हों तो धाय सिकायत कर सकते हैं। सनिवार को भ्रगर सिनेमा न जाएँ, रविवार की शाम का मोजन बाहर न करें, १५ तारीख से पहले ही तनस्वाह समाप्त न होलाए तब धाय चाहें तो यह सोच सकते हैं कि बाहु धपने धर्म से डिग गया। नहीं तो वह सरय सनातन धर्म का धवाध रूप से पानन करता रहता है।

दुनिया में बार-बार युद्ध क्यों होते हैं, यह मेरी समझ में नहीं आता। इसे रोकने के लिए व्यर्थ ही करोड़ों डालर सू० एन० धो० पर खर्च किए जा रहे हैं। दुनिया को सहनशीलता धीरे समन्वय का पाठ धाय वी० एन० राब की स्पीच से नहीं, दफ्तर के वातावरण से लेना चाहिए। यहाँ गांधी के शिष्य, लेनिन के नाती अधिस के पिटू धीरे गुब्बी के चेले एक ही कमरे में घाठ घप्टे रहते हैं, मगर कौसी अन्ति, उनमें कमी हाथापाई की नी मौवत महो आता। यह नहीं कि वे चुप रहते हो, या ठहम न करते हों, धयबा कोई किसी की बात मानने को तैयार होजाता हो। वे सिर्फ बहस के लिए बहस करते हैं। इसलिये बहस करते हैं कि बहस करना फँसम धीरे बहप्यन की निघानी है।

धायने कमी शानिधाम की बटिया के दर्शन किए हैं?—गोल, सुधिबकरण धीरे मयनानन्द से परिपूर्ण। बस, दफ्तर के बाहु को नी धाय एकदम धानिधाम की ही बटिया समन्धि। वैसा ही कोने, किनारों से हीन, गोल-सिसपट। वैसा ही चिकमा जिस पर नाम को पानी नहीं ठहरता। वैसा ही देवता जिसे भूल सताती है न प्यास। वैसा ही पत्थर कि ससार में कुछ भी होता रहे उनके कामों पर नू नहीं रेंगती। वह मला धीरे उसका कुर्सी खपो सिहासन मसा। मड़ी ने उठामा, उठा। बीबी ने दे दिया, सो सा लिया। काम सिना,

कर दिया । न मिला, बैठा रहा । डाट सगादी, चाँपने मया । तिकास
दिया तो रो पड़ा । साहब की सीधी नजरें हुईं, तो फूल गया । बीबी
ने खरा हँस कर देख लिया तो गा उठ्य—

घोंघिया मिलाके, तिया भरमाके, बने नहीं जायद, हो ।

हिन्दी के आलोचको

“तुमने आलोचना दिखाने के लिए वे जो सी-
पचास अक्षर अपनी आंखों में मोटा कर मेरा पर रख
छोड़े हैं, मैं चाहता हूँ कि तुम हम सबका एक बार ही
मेरी पुस्तक पर प्रयोग कर बैठो।”

मैं हास-परिहास की कविताएँ भ्रष्टी लिखने लगा हूँ। भ्रष्टी ही नहीं बहुत भ्रष्टी लिखने लगा हूँ। इसके प्रमाण में मैं आपकी सम्पादकों के पत्र कवि-सम्मेलनों के निमन्त्रण और छपी हुए कविताओं के वे सब 'कटिंग' जो मैंने सम्हासकर एक रजिस्टर में चिपका लिए हैं, जब चाहें सब दिखा सकता हूँ।

मेरी सफलता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि कविता बिना सुने ही सोम मेरी शक्ति पर हँसते हैं, सुनने के बाद तामी पीटते हैं और बाहर निकलने पर धंगुसी उठाते हैं।

इसीलिए जब हिन्दी साहित्य का इतिहास लिख जाने वाले प्राचार्य रामचन्द्र शुक्ल के असामयिक निधन पर हृष्टि डालता हूँ तो कभी-कभी मुझे बड़ी मिराचा हो जाती है।

हाय ! जब शुक्लजी के बिना कौन मेरे स्वान को हिन्दी साहित्य में स्पष्ट कर सकेगा ?

तब ऐ हिन्दी साहित्य के नवीन इतिहास लेखको ! विधाता की इस सूत्र को जो उसने प्रथम ही शुक्लजी को अपने पास बुलाकर की है अपने इस उत्तरदायित्व को जो भनायास तुम्हारी कसम पर धा पड़ा है क्या तुम निबाह सकने में समर्थ हो सकोगे ?

बुद्धिमानी इसीमें है कि तुम इस अवसर से लाभ उठाओ। तुम्हारी लेखनी मेरे विषय में लिखते हुए बच हो चठे। तुम जिसो 'व्यासजी' जैसी धमर शक्तियाँ साहित्य के इतिहास में कभी-कभी ही उदित होती हैं। हिन्दी के इतिहास में तो इने-गिने दो-चार ही व्यक्ति हैं, जिनका नाम थक य व्यासजी के साथ लिया जा सकता है। इस छोटी-सी उम्र में ही उनकी कसम ने जो षौहर दिखाए हैं, ऐसे उदाहरण हमें तो हिन्दी-साहित्य में देखने को नहीं मिले।

कोई भले बहूँ कि शुक्लजी नवीन लेखकों के यद्यपान में बड़े



“हे हिन्दी के धातोजकी धापो में तुम्हें रास्ता बनाया हूँ।” (पृष्ठ १७)

ही कृपण से पर धाज कहीं बह होते और मुझे देस पाते तो विद्वानस मानिए कि वह मेरे अन्तर को सोमकर रख देते और लिखते

“व्यासजी की कविताओं में हमें शिष्ट हास्य की सुन्दर साँकी मिली । उन्होंने अल्पम्य वस्तुओं में से हास्य की उद्भावना न कर बीचन की हास्योन्मुखी वृत्ति का उद्घाटन किया है । जैसे के अमिष्यजनाबाद में व्यापाचार (इम्प्रेजिडिगम) का पुढ देकर सामयिक लहरियों से उन्मत्तित व्यासजी की हास्य-सृष्टि अपूर्व हो उठी है ।”

पर शोक ! वह रत्नधारणी न रहा ! तब ए नए युग के उदार समाजोपको ! तुम अन्न यह लिखो

“व्यासजी ने हिन्दी के सारे परिष्कृत लेखकों को १० अन्न दया १००० मील पीछे छोड़ दिया है । उर्दू के अन्नकर होते तो वीठों तले घँमुली बसा जाते । ‘हास्यरस’ के बुदबुने कहुना और बात है, अस्तियों के स्वयं बेदास्य होता है पर हास्य को विषय और वस्तुओं में बाँचना देहा कार्य है । व्यासजी ने इस बहुत्वपूर्ण कार्य को अपने हाथ में लेकर हम लोगों के मस्तर को ऊँचा उठाया है । वह सुर की तरह सरस, तुलसी की तरह व्यापक और बिहारी की तरह सर्वत्र प्रिय रहेंगे ।”

और ए मेरे भासोपको दोस्तो ! तुम्हारी मित्रता यदि धाज के बिना काम नहीं भाई तो फिर किस दिन काम भाएगी ? अपनी पुस्तक की पहली प्रति मैं तुम्हारे पास भेज रहा हूँ । तुम हिन्दी के पत्रों में बह सूझान दरपा कर दो कि कहर मच जाय ! मेरी कविता में जो गुण नहीं हैं उन्हें खोज निकालो । पाठक को सोच न सकें, बह मिल जासो । हे हिन्दी के भासोपका धायो, मैं तुम्हें रास्ता बताता हूँ । तुमने भासोपना सिखने के लिए वे जो सौ-अधास धम्ब अपनी बापरी में मोट कर भेज पर रस छोड़े हैं, मैं चाहता हूँ कि तुम उन सब का एक बार ही मेरी पुस्तक पर प्रयोग कर बैठो । तुम मिलो

“व्यासजी अर्घंही के पद हैं, अँच के बड़ । बस का अन्नक लेखक धाजा-दीपक में उनसे पों पीछे रह जाय है और अमरीकी लेखक अपनी अस्तौतता के कारण हमारे व्यासजी का पस्ता पों नहीं सक सकते ।”

यही नहीं, तुम यह भी लिखो

“इतर पञ्चोत बरस के हिन्दी में देती अन्नकर कोई

पुस्तक नहीं निकली, हम प्रत्येक हिन्दी पाठक का ध्यान इस पुस्तक की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं।”

घाप क्या हिन्दी के पाठकों की भावत से परिचित नहीं कि वे किसी भस्मे आबमी की कद्र नहीं करते। भस्मे न करें ! यदि हम घापस में संयुक्त हैं तो पाठक हमारा कर ही क्या सकेंगे ? घाप मेरी कद्र कीजिए, मैं घापको दाद दूंगा। मैं कवि ही नहीं आलोचक भी हूँ। घाप मेरी प्रशंसा कीजिए, मैं घापकी वारिष्ठा के पुस बाँध दूंगा। यदि कवि हूँ तो व्यास और वाल्मीकि से बड़ा दूंगा। यदि घाप इतिहासकार हूँ तो विसेन्ट स्मिथ से भी ऊँचा उठा दूंगा। यदि घाप विचारक हूँ तो बर्नाबेसा और बिनोबा से भी दस हजार मीस (आजकल के बायुयानी युग में क्यम क्या चीज है) धागे बड़ा दूंगा—‘मनतुरा काजी बिगोयम तो मरा हाजी बिगो’।

मिचो ! मैं चाहता हूँ तुममें से कुछ जान-बूझकर मेरे विद्वद सिखना शुरू कर दें। क्योंकि मुझे बताया गया है कि ये विद्वद आलोचनाएँ प्रचार में बड़ी सहायक होती हैं। हाँ, तो बनारसीदास अतुर्बेदीजी, एक आन्दोलन मेरे नाम पर भी सही ! माई राम विसास में प्रयतिवादी नहीं हूँ—एक तमाषा मेरे गाम पर भी। मेरी कविता के छन्द प्रसंकार और व्याकरण किछोरीबासनी कहाँ हो, तुम्हें पुकार रहे हैं ! मैं कमबजिया नहीं हूँ मेरे पूरवी मिचो ! कहाँ सो रहे हो ? तुम सिखते क्यों नहीं—

“जिसे देखो घास वही कवि बनने कायदा है। हास्य सिखना तो सोयों ने मिलीना समझ रखा है। सभी व्यास नाम के महाशय की एक पुस्तक देखने की मिली। सिखक अपने आत्मकी न जाने क्या समझे बँझ है, पर अन्त में ऐसे हास्य का मयूना हमें तो अत्यन्त बिकार है वही विषय। अनाथ की अन्धी के लिखाय हुतरी कीडों में हास्य ही नहीं फुरता। कविताओं का टोकनीक एकरम पुराना है और विचार हुकरत के १२वीं अलायों के। नारी को यत्न बिजिन किया गया है। नारी को अरमान करने की मिल मियो बँती प्रचुति भी इस पुस्तक में बिकार है वही है। ऐसा अमरता है कि निरन्तर व्यास की अपनी विद्वद भावना ही अन्धी के रूप में मुकर

हो उठी है। अधिकांश कविताओं को पढ़कर लगा कि यह भारतीय घर का बिज नहीं, स्वयं लेखक के अपने घर का पहलू है। इन कविताओं में छोटी की एकतामता है। सुख, चिन्ता और सामाजिकता की प्रकृतिता की गई है। अधिकांश कविताएँ अस्वीत हैं। अभी पाठ्यात्म वेष्टों के मुकाबले हमारा हिन्दी का साहित्य कितना सुन्दर और नयन्य है कि उसकी तुलना नहीं की जा सकती। व्यास धनर सेप्रेमी नहीं जानते तो उन्हें अपने पड़ोसी बंगाली, मराठी के साहित्य की ही देख जाना चाहिए। तब उन्हें अपना स्वान ठीक से दिखाई दे जायगा कि उनके पासक में उनकी रचनाएँ, कितनी बूढ़ कितनी बोरो और एकरस हेतुकी हैं।”

इसके बाद तुम भाँस मूंदकर मेरी किसी एक कविता को उठा सो और उसमें अगह-अगह छन्द मङ्ग पुनरावृत्ति धाम्यप्रयोग और अस्वीमता की बारीकी से तन्नाथ करो। प्रयत्न करने से वासू में भी तेम निकल जायगा है। पुस्तक के गैट-अप कागज और मूल्य पर भी तुम्हारी टिप्पणी रहनी चाहिए। प्रेम की अशुद्धियों को बधा जाना सही आलोचना नहीं है। और देखो चलते-चलते मेरे प्रकाशक पर भी अपनी स्याही की दो बूँदें ऐसी छिड़कना कि अगली पुस्तक छापने से पहले उसे दस बार सोचना पड़ जाय। मतलब यह कि मेरी कविता को हर प्रकार से तुम्हें दो कोड़ी की सिख करके ही दम सेना है, समझ गए न ?

यह मेरी पहली पुस्तक है। मुझ पर बड़ी-बड़ी कितानें तो बाद में लिखी जाएँगी पर कुछ छोटी पुस्तकें यदि अभी निकल जाएँ तो कोई हर्ज न होगा। मतलब मेरा कहने का यह है कि यदि ‘व्यास की कत्ता’ (गुप्तजी की कत्ता) ‘व्यास एक अध्ययन’ (साकेत एक अध्ययन) जैसी कितानें अभी नहीं लिखी जा सकें तो जनाव प्रभाकर माधवे तुम अस्वी-से-अल्पे दिस्ती जैसे आओ। मैं आजकल यहीं हूँ। मुझ से आकर दो-बार ‘इन्टरव्यू’ से सो और अस्वी ही ‘व्यास के विचार’ (जनेन्द्र के विचार) नाम से एक पुस्तक तैयार कर दो। छपवाने का सब प्रयत्न हो जाएगा।

और पाठको, ऐ माँगकर पुस्तक पढ़ने वाले साहित्य के शौकीन।

मजाक नहीं खुशामद करना भी एक कला है। और कमबस्त, ऐसी कला है कि सारी दुनिया इसमें माहिर होना चाहती है। लेकिन बदकिस्मती भी ऐसी है कि नाचने-गाने और मयवास जाने भूठ या सब किसी-किसी सभ्य देश में तो खोरी सिखाने तक के स्कूल-कासेज खुल गए हैं। पर खुशामद जैसे खुशमुमा और दिन रात व्यवहार में जाने वाले परम उपयोगी 'घाट' पर न तो कहीं कोई डिग्री कासेज है और न किसी यूनिवर्सिटी में इस विषय पर 'बीसिस' ही स्वीकार की जाती है। मतीबा यह है कि योयियों के लिए भी परम दुर्भाग इस महान तत्व का विविधत अध्ययन नहीं हो पाता और इस विद्या का जैसा शास्त्रोक्त और सुसंस्कृत प्रचार होना चाहिए वैसा नहीं हो रहा।

धमी तो हास यह है कि धादमी की झकल में अपने-अपने धमय धमय हुरी-कटि बना रहे हैं कि सेक-सेककर टोस्ट पर मक्खन लगाया जा रहा है। अपने-अपने बाल और कटि हैं कि परन्द फेंस रहे हैं, मछलियाँ घटक रही हैं अपना-अपना मांजा और करिबमा है कि पत्तों बड़ाई जा रही है और पेच-पर-पेच उलझा दिए गए हैं और इस तरह अपनी-अपनी किस्तियाँ हैं कि धार में छोड़ दी गई हैं कि दिनारे लय आएँ तो राम मासिक और डूब मरें तो मर्जी मयवास की।

माई मेरे, पिताजी की फासतू कमाई पर गोठे सा-साकर बी० ए०, एम० ए० होबाना और बात है और जीवन में बिना कौड़ी पैसे के सफसता साम करना धमय बात है। धापने चाह छम्बीस वर्ष तक बसातु ब्रह्मचर्य पासन करके जैसे-तैसे बिधासकारिठा अने ही हासिस कर सी हो, लेकिन जब तक खुशामद का 'कीर्ष' बेकर धापको 'त्रिकड़म' की सगद नहीं मिसती, सब तक किसी धपवार



“मजाक नहीं सुधामर करना भी एक कला है।” (पृष्ठ ७२)

की सम्पादकी तो क्या, आपको श्रीमानजी, कहीं अपरासीगीरी भी नहीं मिल सफती !

जी हाँ अपरासीगीरी ! विश्वास न हो तो अपने सहर में जो म्युनिसिपल कमिटी है उसके सभके से लेकर सैक्रेटरी तक स एकान्त में जरा पूछ लीजिए कि हुआर, जो-कुछ आज आप दिखाई देते हैं, वह सब किसकी बसोमत है ? हर ईमानदार भादमी आपसे यही कहेगा—अजी, हम किस काबिस हैं, यह तो महामहिमामयी परम भयवती सुशामद देवी का ही परम प्रसाद है !

यही क्यों, आप किसी भी दफ्तर के मैनेजर क्या हैड क्लर्क तक के हाथ पर गगाजसो रखकर ईमान से पूछ लीजिए कि महाराज, हम किसी से भी जिञ्ज नहीं करेंगे, न असवारों में ही छपने देंगे, पर कृपाकर यह तो बताइए कि जिस कुर्सी पर आज हमें बैठना चाहिए था, वहाँ आप कैसे बिराजमान हैं ? यह क्या उत्तर देंगे यह तो मैं नहीं जानता लेकिन इतना अवश्य बतावूँ कि जितने भी ये बड़े-बड़े सब, कलेक्टर, तहसीलदार और नानदार हैं, इन सबकी नीब में कहीं-न-कहीं सुशामद का पानी अवश्य पड़ा हुआ है !

और क्यों न हो, सुशामद कोई आज की या अनहोनी चीज तो है नहीं । हम सबका सिरजमहार, अस्मिन् विश्व का मिमन्ता, सुद परमेश्वर ही अब महा सुशामदपसन्द है तो हम भरती के तुच्छ मनुष्य की क्या बसाई । वेद-शास्त्र, पुरान-कुरान गीता-बाहबिस सब एक स्वर से कहते हैं कि उसकी प्रार्थना करो, उससे दुभाएँ माँगो, उसके सामने नाक रगड़ो, अपने को तुच्छ समझो उसे सर्व शक्तिमान कहो । यही नहीं, उनका यह भी कहना है कि आप सास पापी हों, लेकिन सारे जीवन में यदि एक बार भी आपकी सुशामद-मरी टेर उस तक पहुँच जाय, तो बस फिर जनम-जनम के पाप स्वयं ही कट जाते हैं । प्रजामिन्, गीब, व्याध, मणिका और यन्त्रज की धमर कबाएँ, हजार मुख से सुशामद की ही महान शक्ति का जय घोष कर रही है ।

यह कहिए कि तकवीर हमारी कुछ अच्छी थी जो सीध ही हमने सुसामद के महत्व और महारम्य को हृदयगत कर लिया । उस्तादों की निलम भर-भरकर हजारों नई-पुरानी कविताएँ पाद कर डालीं । पचासों जगह उन्हें अपनी बसाकर सुना डाला । तिकड़म से नकस कर करके विचारद और साहित्यरत्न पास कर डाले । कवियों की खुशामद करके कुछ तुर्क ओढ़ना सीख लिया । महान कवियों और लेखकों की नई-पुरानी कृतियों पर प्रशंसात्मक लेख लिखे । खुशामद कर-करके उन्हें पत्रों में छपवाया । इस तरह क्रम-क्रम से साधना करने पर आज यह दिन भी आया कि भोग सुप्त गए कि हम पहले क्या थे ? अब तो हम हैं महामहिम स्वनाम धर्म्य श्री कवि लेखक और पत्रकार ।

तो माई मेरे, इसीलिए कहता हूँ कि सुसामद से भागो मत । इस दुनिया में सब कुछ असत्य है । सत्य केबल दो वस्तुएँ हैं वह यह कि धरर नासायक हो तो खुशामद करो और भायक हो तो खुशामद करारो । सघार और सफसता का रहस्य, बस इसीमें छिपा है ।

इतनी भूमिका और खुशामद के इस महामहिमामय माहारम्य के बाद आप धायद इस कसा के कुछ तीर-तरीके अवस्य जानना पसत्य करें । यों तो यह विषय योगियों के लिए भी दुर्लभ और तपस्त्रियों के लिए भी परम गहन है, पर क्योंकि अपनी पत्नी के पुष्य प्रताप से मैंने इसमें अतिकथित सिद्धि लाभ की है, इसलिए अपने बीभाई यताम्बी के कुछ अनुभूत प्रयोग आपकी सुबिधा के लिए यहाँ देखा हूँ । जाना है मेरे इस परमार्य से पाठकों का स्वार्थ प्रबस्य ही सिद्ध हो सकेगा ।

तो सुनिए, सुशामद की कसा में सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण बात यह है कि आप सुशामद तो करें, लेकिन सुशामदी न समझे जाएँ । यानी, जिसकी सुशामद आप करना चाहते हैं, उसे यह न मासूम हो कि उसकी सुशामद की आरखी है ।

आप में से धायद कुछ बेरी इस बात से सहमत न हों और

हो महामहिम,

आप बँधों के लिए भ्रम और डाक्टरों के लिए दुर्गम हैं
होमियोपैथ आपके आगे आने से हिचकते हैं और हकीम बेचारों की
ठीक वस हिचकी ही बँध जाती है। तीन सोक में आपके उतारे का
कोई और उपाय संभव न समझकर, हम सब आपकी ही शरण
आए हैं, पाहिमाम प्रभो ! रखा कीजिए, क्या कीजिए !

हे च्चराधीश,

आपने महासन्तु कुनैम को चारों कोने बिलत पछाड़कर, आपने
जो परम पौरुष प्रदर्शित किया है, उससे बेचारी कुटकी के प्राण
कुटकी में निकल गए हैं। ठब चिरायता, ज्वरनाशक और सूड़ी-ताप
मसा आपका क्या विगाड़ सकेंगे ? जब पीस्यूडीन और नैपासीन की
कुध नहीं बसती तो बेचारे तुमसी के पत्ते अभी चढ़ाए उन्हें
शामिग्राम पर !

हे महाकास

कौन ऐसा है जो आपके प्रबल प्रताप से परिचित न हो ? भरे
जगस में खेर से बचा जा सकता है, बरसती रात में टूटी छत के नीचे
टपके से बचा जा सकता है, खोर बाजार करते हुए सजा से बचा जा
सकता है, दफ्तर में बड़े बाबू की छुड़की से भी निजात मिल सकती है
और घर में भीमतीजी की सन्तानिमों से भी बचने के तरीके
ईजाद हो गए हैं। लेकिन हे अरि-भद-मर्दन ! जिस पर जीवन में
आपकी एक धार कृपा हो गई, उसकी दबा तो धामद फिर भन्वन्तरि
के पास भी नहीं है।

हे प्रसयंकर,

भारतवर्ष में वास करने वाले तेतीस करोड़ देवताधर्मों की (इधर
जनकी जनसंख्या भी बढ़ गई है) आपके आर्तक से पिथ्यो बँध चुकी

11



“उन्होंने लिहाफ के ऊपर रजारी रजाई के ऊपर कम्बल कम्बल के ऊपर
 गद्दा गद्दे के ऊपर दही घोर हरी के ऊपर बाबर घोंककर जिस घेंपा-मूल का
 प्रदर्शन किया कि !” (पृष्ठ ३३)

है । मई दिवसी में वास करने वाले बड़े-बड़े विलासी इन्द्र बाटर वक्श के सुपरिस्टेबेन्ट यानी बरूण, बिजमी कम्पनी के मैनेजर यानी सूर्य और घसवारों क सम्भावक यानी नारदों के दाँत आपकी छाया मात्र से किटकिटा कर बज उठे हैं । बड़े-बड़े गुण्डे और बानेदार आपके डर के मारे कम्बल रखाई, सोड़ और गद्दों में जा छिपे हैं । यही नहीं, इन सबसे भी परम दुर्द्धर्ष और भद्रमनीय हमारी 'उन' पर जो उस दिन आपकी कृपा हुई तो मैं हियान होगया ! उन्होंने सिहाफ के ऊपर रखाई रखाई क ऊपर कम्बल, कम्बल के ऊपर गद्दा, गद्दे के ऊपर दरी और दरी के ऊपर बाघर घोड़कर जिस छैया-नृत्य का उस दिन प्रदर्शन किया था, उसे यदि रबिवाह देख पाते तो निश्चय ही वह अपनी शांतिनिकेतन की कला-कल्पना पर दीन हो उठते ! उदयचंकर के उर्बर मस्तिष्क में भी इस प्रकार के मृत्यु की कोई समावना अभी तक पैदा नहीं हुई होगी । अहह ! कैसा अपूर्व दृश्य था ! साट हिम रही है, कि देवीजी हिम रही हैं, कि पास सड़ा मै हिल रहा है कि हम सबको हिलाने वाली धरती हिम रही है—कुछ समझ में ही न आता था ? ऐसा भगता था कि अपने पूरे बेग पर महापिनाको का ताँडब शुरू होगया है और परम भगवतो अपने लास्य के लिए अपनी शैया पर से उठने ही वाली हैं !

हे प्रभो,

भगर हमारी सरकार पाकिस्तानियों से फुसंत पागई होती या कम्बल डाक्टरों ने कुनैन में आयरोट न घोला होता और वैद्यजी की पुरानी पुस्तकों को बीमक न चाट गई होती तो हम आपको इतना कष्ट न देते । लेकिन अब तो हाल यह है कि धनाई डाक्टरों ने दे-देकर इर्बकसन मेरी बाँह को छसनी कर दिया है, मेरी पत्नी के गले में पीपल का पत्ता सास कपड़े में बंधा लटकवा रहता है मेरे कपड़े एक घाँस में काजल समाए फिरते हैं और उनकी दावी ने ताक पर मनीसी के इतने पैसे इकट्ठे कर रले हैं कि धमर उन्हें से सजने की हिम्मत मुझे होजाती तो सच समझिए कि कम-से-कम

एक महीने की घाक-भाजी का काम तो बस ही जाता है ।

प्रतर्पामिन,

कादुस और कघार का रास्ता ससरे में है, इसलिए मुनकामों का मोप होगया है, सेब और प्रमार के वर्धन दुस्वार होखे हैं, मौसमी बेमौसमी होगई हैं और मिट्टे छट्टे निकसने लगे हैं । तब, पानी भरी गबेलियाँ और पानी-पानी दूध ही तो इस १२५ पीण्ड, ५ फुट ६ इंच वाले शरीर का आधार है ।

परम बुद्ध पै

बेभारे परभुरामजी तो केवस २१ बार ही अकेसे क्षत्रियों का नाश करके बक गए, लेकिन आप सस-सहलों वपों से बिना बके छट्टि के दीम-हीन भटके प्राणियों के लिए मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करते चले पारहे हैं । मेरी दावी जिसे जीवन में ५६ बवार साट से मोचे नहीं उठार सके, वह आपकी तीन पामियों में ही वारावायी होगई । मेरी कृपाजी ओ मुह्लसे-भर के भ्रमकों में सहज ही बिजय-पी प्राप्त कर लेती थी, आपसे उलभ कर बस बसी । यही क्यों, पड़ीसी बनुर्मा, मोदी सालिगराम बीसा तमोली गड्ढर हसवाई मगू पहल बान जिन सबको मैं अपने मैसे-कूपैके बपकों में साँसते-साँसारते देखने का अभ्यासी होगया था, वे सब आपकी सेवा के लिए यहाँ से बिदा होचुके हैं । छबीसी कुंजड़िन और साँवरी मामिन ओ प्राहकों के चुक जाने पर भी अपने भ्रमन्त भ्रमकों को धड़ी ही सुखद नागरिक भापा में चुकाया करती थीं वेसता है कि पिछसे सप्ताह से उनकी सुमधुर ध्वनि भी लिङ्की की राह मय-मंवर गति से मेरे कमरे में प्रवेश नहीं कर रही । और हाँ, आपके प्रठाप से अपरिचित उस गगोसी डाक्टर का वह गगोसी कम्पाठ डर, ओ डटकर मिक्बर में पानी मिसाया करता था, कस से बिसपेम्सरी से गायब है ।

हे हे मसेरिया महाराज

इसमें तिल-मात्र भी सन्वेह नहीं कि हम संसारियों पर आपकी कृपा हित की दृष्टि से ही होती है । यदि प्रति बयें हबारों-भासों

बीबों पर आप यों कृपा न करते रहें, तो हिन्दुस्तान की आवासीय भसा कही समा सकती है ? लोग आपस में ही कट-कट कर मरने सवें नित्य नये महामारतों की सृष्टि हो प्रति वर्ष एक विस्फोट की समाचना वनी रहे और न जाने क्या-क्या होने सगे ? अस्तु, हम संसारियों को अकाम मृत्यु से बचाने के लिए, गरीबी बेरोजगारी और दूसरी कमठों से मुक्त रखने के लिए और सतति-निग्रह एवं ब्रह्मचर्य जैसी अ्यर्ष बीबों के प्रचार-नियेष के लिए ही आपने धरा धाम को सुशोभित किया है । आप असरण धरण हो ! आप बीमबहु हो !! आपकी अय हो अय हो, अय हो !!!

हे असरण धरण

अय कूनै नही धारै धाठी । काम अजमला उठे हैं दिमाग पिनपिना उठा है और तबियत—उसकी न पूछो प्रमो । अपने ही धर में अपनी धरणाधियों की सो हालत होरही है ! हिन्दुस्तान पहले से ही प्राथमिक अिकित्सा में दस होनाय यह सोचकर आपने धर धर को अस्पतास में पसठ दिया है । धनाय का राधान है । कन्टोल टूटने पर वह भी गायब हाने वाना सुनते हैं ! इन सबका आपने पेशमी उपाय कर दिया है कि पहले तो आपका कृपा-यात्र कुछ खाने-पीने के साथक ही न रहे, फिर अगर खाने-पीने पर उतर ही आए तो ज्यादा खाना ही न आय और जो भी खाए, वह पचा न सके ।

बहुत कृपा प्रमो

दीपावली बीठ गई । उस अखंड दीपराशि में निरख्य ही आपको बाहनों (अधरों) का अभाव होगया होगा । इसलिए आपको कहीं खाने-खाने में बड़ी अमुबिधा होती होगी । फिर जिस काय क लिए आपने धरती-तस पर धबतार धारण करके भारतवर्ष में प्रबसा किया था उसे हमने हिन्दू-मुसलमानों के अगको में स्वत ही पूर्ण कर लिया है । अब आप धपर सोकी को प्रस्नान करें तो बड़ा शुभ हो । देखिए, सुदूर पदिषम आपको बुनीती देरहा है, उधर

अमीरों का आपका आश्रय कर रहा है । लेकिन भारतसूड की महा
 महिमा से प्रभावित होकर यदि आप इसे छोड़ना ही न चाहते हों
 तो हे कूटनीतिक आप अपना हैड-क्वार्टर कराची में क्यों नहीं खोल
 लेते ?

ओ३म् शान्ति शान्ति शान्ति ।

मुसीबत है

“अबब मुसीबत है बमिज्ञान धाकू-उल या मेबहुत पढ़ने बीठता हूँ तो फिठाब डीम मेती हूँ कि अब तुम्हारी उन्न ऐसी पुस्तकें पढ़ने की नही रही । बीराम्प-घतक या भयबद्दीता मेकर बीठता हूँ तो सिर पकड़कर बम्प से बीठ जाती हूँ कि हाय राय ! उकड़ाकर कमी सिबेमा में आ बीठता हूँ तो लीटने पर बर में एक गया बिबेटर तैयार मिलता है । और अब सबसे उन्नकर तुलसीकुठ रामायण गाने लगता हूँ तो कहने लगती हूँ कि अब रात में तो बय प्राराम कर लेने दिया करो !”

कोई एक-दो बार फी बात नहीं हजारों बार अपनी 'उम' से कह-कहकर हार गया हूँ कि देखो बात-बात में दस्तान देना बर्बाद नहीं होता। पर 'वे' हैं कि जैसे अमरीका की भूमकियों की इस चिन्ता नहीं करता, या जैसे हमारे देशवासी नेताओं के भाषणों को इस कान से सुनकर उस कान से निकाल दिया करते हैं, वैसे ही हमारी श्रीमतीजी हमारी बात पर कोई ध्यान नहीं देती।

घरे माई, लाक-भाजी में रसोई-मानी में कपड़े-सस्ते में जेवर जठि में, बसन-ब्यबहार में और बर-गृहस्वी की दूसरी छोटी-बड़ी चीजों में अगर आप दस्तान रकती हैं तो ठीक है। बच्चों की पढ़ाई में घर के प्रबन्ध में, मेहमानों की खातिर में आप विलक्षस्वी होती हैं तो उसे कौन बुरा बताता है। लेकिन मुझे कुर्ता छोड़कर कुल्लटे पहनना चाहिए और भोती को झूटी पर टांग टांगों में पतझून लटकानेनी चाहिए—यह सप्ताह भसा आप क्यों देती हैं? मेरी सम्बी सम्बी मूर्खें रक्ता, बरा सजीवनी से बचना, सनिक कम बातें करना या बाहर झूठी सेकर निकसना—समझ में नहीं आता उनको क्यों नहीं सुहाता ?

ठीक है, आप मसमल छोड़कर बायस घरीसिए, बायस फेंककर सिल्क सीसिए, जार्जेट छांटिए, ससबार पहनिए, गराय पहनिए—और सब बताऊँ, मुझे तो उनके पैट पहनने पर भी कोई सास एतराज नहीं है। परन्तु, भगवान के नाम पर मेरे खादी के भोती कुर्ते को तो रोजाना मत कोसिए।

बाबा, खादी के दोप-गुण मैं तुमसे अधिक जानता हूँ। ठकली पर सूत निकासते-निकासते धौंसुनियों में बस पड़ गए हैं। खादी के खादी को यह कहना कि वह जस्वी फटती है, फटकर सिम नहीं सक्ती, दो बटे बाद मीसी होजाती है, मोटी होती है, छोटी होती



“अब यह भी कोई बात हुई कि वे कौन थे ? य बीम न ? (पृष्ठ ८६)”

है, यह होती है, यह होती है—कोई बात हुई ?

सिर, मेरे रहन-सहन और कपड़ों में यह दिसचस्यो सेती हैं और उनमें अपनी रुचि का परिवर्तन करना चाहती हैं तो करो माई । वेद-शास्त्रों के अनुसार इस शरीर के अर्द्धांग पर तो उनका अधिकार है ही । लेकिन यह क्या बात हुई कि सुबह उठते ही खानातसाधी मुरु होजाती है कि यह चिट्ठी किसकी है, यह पुर्या कहीं से आया है, य नोट कैसे है और रात-रात में यह स्नास किसका उठा साए हो ?

अरे माई, एक तुम न मानो तो क्या, दुनिया ता मुझे मसा भ्रामी मानती ही है । कवि हैं पत्रकार हैं—सुबह से लेकर शाम तक २० भाते हैं और २० जाते हैं । अब यह भी कोई बात हुई कि वह कौन से यह कौन हैं ? भाव यह फिर क्यों आए ? तुम बार-बार इनके यहाँ क्यों आया करते हो ? मुझे इनका यहाँ आना पसन्द नहीं । यह अन्धे भावमी हैं । वह बुरे भावमी हैं । यह असुर हैं । वह मौजू हैं । इन्हें देखकर मेरा मन बनाने को करता है । इनके सामने मैं चाप लेकर नहीं आऊँगी । मैं कहता हूँ कि जब पूछा जाय और आवश्यकता हो तब तक के लिए भाप इन शुभ सम्मतियों को क्या अपने पास नहीं रख सकती ?

रातन कम होगया घाटे में सकरकन्द मिसा है । चाबल ऐसे घाटे हैं, सूजी नहीं मिसती, मैदा कहाँ गई—ठीक है, पूछिए इन बातों को कौन टोकता है ? लेकिन कृपा करके यह तो बताइए कि मेरे के भावों के साथ सोने के भावों का क्या सम्बन्ध है ? साक्षियों के विवाहों का क्या रिस्ता है ? अप्सों के सैटों की क्या तुरु है ?

मैं तो तंग घागया हूँ—हजार तरह से कह देला, मगर उनका हर बात में दसम बेना बन्द ही नहीं होता । अजब मुसीबत है । अभिज्ञान दाम्बुन्तस या मेघदूत पढ़ने बैठता हूँ तो किताब हाथ से छीन लेती है कि अब तुम्हारी उम्र इन पुस्तकों के पढ़ने की नहीं रही । ईसाय-रातक या भगवद्गीता लेकर बैठा है तो सिर पकड़कर

धम्म से बैठ जाती हैं कि हाय राम ! उकनाकर किसी सिनेमा में जा बैठता हूँ, तो सौटने पर घर में एक नया पियेटर तैयार मिलता है। और जब सबसे ऊँचकर तुलसीकुठ रामायण गाने लगता है तो कहने लगती हैं कि भय, रात में तो घायम कर सेने दिया करो !

सैम्प बुझकर सोने लगता हूँ तो कहती हैं—यह क्या किया, उसे जसा दो। जसता हुआ छोड़ देता हूँ तो बपटती हैं—बरा कम कर दो। जन्वी सोने लगता हूँ तो कहती हैं—घमी ६ घबे से ही कुरटि लेने लगे। वेर तक नींद नहीं घाती तो हर मिनट पर टहोकरती हैं—क्या हुआ थाब नींद क्यों नहीं घारही ?

एक दिन मैं उन्हें डाक्टर के पास लेगया। डाक्टर देखकर मुस्करा दिए।

मैंने हरान होकर पूछा 'क्यों ?'

बोले 'इसाब की बकरत इन्हें नहीं, घापको है।'

मैंने आश्चर्य से घपने शरीर पर निगाह डाली। कहीं कोई रोम दोष विचार नहीं दिया।

डाक्टर बोले, 'घाप क्या काम करते हैं ?'

मैंने कहा 'काम ? घबजी घाप मुझे नहीं जानते ? -मैं हूँ।'

बोले, 'बस, यही बीमारी है इसीका इसाब करावाएण !'

मैंने हरान होकर पूछा, 'डाक्टर, क्या कहते हैं घाप ? कविता, लेखन, पत्रकारिता—ये सब बीमारी हैं ! मैं समझ नहीं ?'

'और नहीं क्या ? ऐसी बीमारी जिनका कोई इसाब नहीं,' डाक्टर कहने लगे।

'फिर भी डाक्टर, कुछ बताएँ, प्लीज !' मैंने धवरकर कहा

तो बोले, 'इसका इसाब यही है, घाप इन्हें बीमारी मान लें।

जिस दिन ऐसा समझ लिया, समझलो, बीमारी बसी गई !'

साहित्य का उद्देश्य

‘जहाँ तक मैं संबंध है, वे मास धार्डर पर सप्ताह करता हूँ। मैंने लेख पत्रों की भाँति पर लिखे हैं नाटक परीक्षाओं में लयने को तैयार किये हैं और सब धार्डर पर उपन्यास लिख रहा हूँ। साहित्य का इससे भी अधिक कोई और उद्देश्य है क्या?’

साहित्य का भी क्या कोई उद्देश्य होता है ? मेरी समझ में तो अभी तक आया नहीं । पर होता कुछ अवश्य होगा । क्योंकि अगर सचमुच कोई उद्देश्य न होता, तो तारों भरी रात की मधुहोशी में जब ससार सुप्त की मीद में बेसुध पड़ा रहता है, ये कवि लोग जलती आँखों से अन्धकार को न ताका करते तारों से तार न मिसाया करते, वायु की सिसकियाँ न सुना करते और अकारण ही ये बुद्धिमोक्षी अपने देश नगर, मुहल्ले और पड़ोस क्या पास सेटी अन्नमुखी पत्नी को सूझकर कभी चाँदनी की याद न करते कभी निद्रा की छाड़ी न खींचते कभी स्वर्गगा में बिहार न करते और कभी उपा के अरुणिम कपोलों पर उनकी सजबाई नखरें न फिसलती ।

उद्देश्य न होता तो क्या कहानीकार स्वयं अपनी कहानी को सूझकर बस के स्टैंडों काँफ़ी हाठसों कसबों नाघघरों और बेस्वा सयों तक में दौड़-दौड़कर बार-बार पहुँचते ? आबारों की तरह बाजारों में घूमते ? पार्कों में फिरते ? प्लैटफार्मों पर ठाकते ? गमियों को नापते ? सिड़कियों को झाँकते ?

उद्देश्य न होता तो यों आज के नाटककार वर्तमान को झूठ कर झूठ का नाटक रचा करते ? भविष्य के पर्व उठाया करते ? उपयासकार इस काण्ड की लंगी में भी पोये-पर-पोये रखते-विराते चले जाते ?

उद्देश्य न होता तो आलोचक इतना यत्न क्यों फाड़ते ? साहित्य क्यों छपता ? क्यों बिकता ?

सचमुच, कुछ-न-कुछ उद्देश्य तो साहित्य का होना ही चाहिए । पर सच बताऊँ, अब तक इसका उद्देश्य मेरी समझ में नहीं आया ? हाँ, मेरी साहित्य की साधना किसीसे कम नहीं । अपने साहित्यिक जीवन में प्रवेश करने की रजत जयती मनाने में अब केबल



बुद्ध-बुद्ध उदय लो मादिये वा होला ही बादिण ।" (पृष्ठ २९)

५ वर्ष की ही देर बाकी है। इस बीच मैंने यह नहीं कि सिर्फ दिल्ली में रहकर भाड़ ही भूँसा हो—स्कूलों के मोट्स और किताबों की कुञ्जी से लेकर साहित्य और दयान पर बड़े-बड़े ग्रन्थों को खन दिया है। स्फुट कविताएँ लिखी हैं, संबन्धकथ्य छपाए हैं, गल्प लिखी हैं, नाटक लिखे हैं, और उपन्यास लिख रहा हूँ। टनों कागज, प्रकाशक लोग, मेरी कृतियों पर भ्रम तक गया चुके हैं। और यह भी नहीं कि पुस्तकें छप कर ही रह गई हों। वे बिकी हैं। उनके सत्करण भी हुए हैं। जनता ने उन्हें किस हद तक पसंद किया है, यह तो मैं नहीं जानता, मगर समासोचकों के शानदार सर्टिफिकेट उन्हें अवश्य प्राप्त होगए हैं।

लेकिन अगर आप मुझसे पूछें कि मिलने के पीछे मेरा क्या उद्देश्य है, तो बाप आपको चाहे निराशाजनक प्रतीत हो, मैं आप से कुछ छिपाऊँगा नहीं।

बाप यह हुई कि बचपन में पढ़ना-लिखना कुछ जम नहीं पाया। सोहबत-सोसाइटी भी नहीं मिली। स्वास्थ्य और सलीका भी नहीं था। घरवाले निकम्मा कहते थे और परिवार वाले भावारा। बाजार वाले विश्वास नहीं करते थे और समाज वालों से यद्यपि घनी सीधा वास्ता नहीं पड़ा था, मगर पूत के पाँव पालने में ही देखकर, पहले से ही उनके काम-बूँद सड़े होगए थे।

अपने आपको यों चारों ओर से घिरा पाकर मैं बिलिप्त-सा हो उठा। यह ठीक है कि मैंने हाप-पैर नहीं फेंके, कपड़े भी नहीं फाड़े, खाना-पीना भी नहीं छोड़ा, पर हाँ, मैं बकने-बोसमाने अवश्य सगा। २४ में से १२ घंटे मेरे बड़बड़ाते धीठसे। मेरी माँ को विश्वास होयया कि जब बस, कपड़े फाड़ने की मौबत घाने ही बामी है। लेकिन घनी अचकचाकर एक दिन देखता क्या है कि मेरी इसी बड़बड़ाहट को लोग कविता कह उठे हैं। पहले तो मैंने लोगों के इस कथन पर स्वयं विश्वास नहीं किया मगर जब मित्रों से प्रारम्भ होकर उत्सवों और उभा-सम्मेलनों तक मैं मेरी

किया करते हैं।

साहित्य को सखी की झंकार न कहकर, बावसे मनोवेगों की झंकार कहते हैं। सीधे स्वहित की साधना न मानकर, उसे लोकहित का साधन बताते हैं। साहित्य को भौतिक सखों में सहायक न समझ कर उसे सोकोत्तर आनन्द का दाता समझ बैठे हैं। क्या समझ है इन समासाधकों की कि जो मन की विकृति से, मस्तिष्क की अस्वस्थता से और शारीरिक ह्रास और त्रास से जन्म लेता है उसे लोगों ने मानवता का उद्धारक समझ लिया है।

साहित्य और मानवता का भी कोई सम्बन्ध है, यह मैं आज तक नहीं समझ सका? मैं पूछता हूँ कि बिच्छू-अपीकृत यज्ञ ने बादलों द्वारा अपनी प्रियतमा को अन्वेष भेजकर मानवता का क्या कल्याण किया? दुष्यन्त, ने कण्व के धाम्यम की सकृन्तमा से विवाह करके मनुष्य जाति पर कौम-सी कृपा की? राम ने अकेली अपनी सीता को पामे के लिए करोड़ों नर-वानरों को ब्रह्मा दिया सोने की सका को उजाड़ फेंका, इन कृत्यों के बहाने के लिए बड़े-बड़े पोषे रचना—क्या वास्मीकि और तुससीबास की मनुष्यता थी? कृष्ण ने भारत भर के वेजस्वी-वीरों को सडा-मडाकर मरवा जामा, क्या व्यासजी महाराज 'साधुओं का परित्राण' इसी प्रकार करना चाहते थे?

हीन पैर बुम्दाबन से मधुरा और खंडीदास, बिद्यापति एवं सुरदास बेचारी राधा को रसा-रसाकर मारते रहे, गोपियों की जीवन-भर तरसाते रहे और उनके प्रसंसक मानवता की इस निर्मम हत्या पर बाहू-बाहू करते रहे। अन्ध हृषीकेश कि इन महानुभावों की परिपाटी

उस भूम

भासानी

जाते हैं।

बुद ही से

भी

देसते नहीं, कसे

के से मिस

की पैया

आते

1913



आर्यस्य का बहस्य लिखते जाता पीर छात जामा पीर । (पृष्ठ २६)

बकर हैं, मगर शीघ्र ही या तो अदासत के कटघरे में या किसी के शक्तिशाली प्राणियों की बूँटों से उनका धमन होजाता है और 'बट्ट मगनी पट्ट ब्याह' की घहनाई बजने लगती है ।

अब बताइए, साहित्य का उद्देश्य यह होना चाहिए या वह ? मनुष्यता इसमें है, या उसमें ? मनोवेग इसमें अधिक बोधित होते हैं या उसमें ? कहिए "सारसप्पा" अधिक गाया जाता है या "भो-सम कौन कृत्सि खस कामी" ? बताइए साहित्य अस्पमत के कुछ दूँठ पण्डितों के लिए है, या स्वतन्त्र भारत के, कोटि-कोटि संबेदनशील पुत्रक-पुत्रिणियों के लिए ?

पत्रकार की पहचान

“ससकी भेदती-कुरेवती-ती पाँचें पन्ने-बौकम्मे-से
 काल मोर के पंनों-ती छितपी हुई लंबी-लंबी धंणुमियाँ
 पीर कम जाई हुई पीड़ की हृबी डर से ही पुकार
 पुकार कहती हैं—मरे, बचो मैं पत्रकार हूँ।”

पत्रकार की पहचान

“उसकी मेरती-कुरेदती-ही पाँखें पल्ले-बौकल्ले-से
 काल मोर के पंखों-ही छिजटे हुई लंबी-लंबी धंभुमियाँ
 घोर जम खाई हुई पीढ़ ही हड्डी इर से ही पुकार
 पुकार करती है—घटे, बघो मैं पत्रकार हूँ !”

मूर्खों के समाज में चाहे पंडित को न पहचाना जा सके और चाहे पंडितों के समाज में मूर्ख की पहचान न हो लेकिन आजकल के सम्य समाज में पत्रकार चाहे जैसे कपड़े पहनकर आए, उसे पहचानने में कोई गलतफहमी नहीं हो सकती ।

मुंह खुलने पर तो बछड़े से लेकर पांडेय बेभन शर्मा उग्र तक की पहचान होजाया करती है, लेकिन यह जो पत्रकार नाम का प्राणी है उसे घाँस कान नाक, हाथ की अंगुलियों और रीढ़ की हड्डी से घेरे में ही भाँप लिया जा सकता है ।

उसकी भेवती-कुरेदती-सी घाँसों, पल्ले-बौकने-से कान, मोर के पंजों-सी छिछरी हुई लंबी-सबी अंगुलियाँ और छम-छाई हुई रीढ़ की हड्डी दूर से ही पुकार-पुकार कहती है—भरे, बचो मैं पत्रकार हूँ ।

जो दुनिया की खबर रसता हो, मगर जिसे खुद अपनी अपने घर की, भरवाली की कोई सौज-सबर न हो जो दुनिया की खबर भेता हो, मगर खुद उसकी खबर लेने वाला दुनिया में कोई न हो, जिसके पास न अपना पत्र हो न अपनी कार हो, मगर फिर भी जो पत्रकार कहलाता हो—उसे तो सूझता क्या भ्रमा भी दूर से ही पहचान सकता है ।

कवियों के सम्बन्ध में जो यह कहावत है कि वे जन्मात होते हैं, बनाए नहीं जा सकते उसे तो इस नई जनगणना में, कवियों की महती जनसंख्या ने प्रसन्न सिद्ध कर दिया है, लेकिन, पत्रकार जन्म से ही पत्रकार होते हैं, यह बात एकदम सच है ।

बचपन में जो बालक सबसे अधिक दंगा करता हो निर्भय गानियाँ बकता हो दिन-भर घर से बाहर घूमता हो, पिता की पटकार और मास्टर की मार का भी जिसे बिस्कुत भय न हो—

एकदम समझ सेना चाहिए कि सड़का बस पत्रकार बनकर रहेगा ।

यह भविष्यवाणी १०० में ११ अगह सही उतरेगी । एक प्रति घत गलती की संभावना सिर्फ़ तभी हो सकती है जबकि ऐसा सत्कारी बासक १६ वर्ष से भी कम उम्र में किसी सड़की को बिना सूचित किए ही, प्रेम कर उठे और सूचित होने पर वह सड़की उसे वुत्कार दे, तो समझ भीलिए कि सड़का हाथ से गया यानी भव पत्रकार नहीं बन सकता । इस बेचारे के करम में तो केवल कवि होना ही लिखा है ।

यद्यपि न मुझे शुद्ध हिन्दी आती है, न अंग्रेजी । न बी० ए० हूँ न विद्यालयकार । एक-एक करके १७ पत्रों को छोड़ने के प्रतिरिक्त और कोई सनद या 'डिप्लोमा' मेरे पास नहीं है, सठियाने में भी अभी पूरी एक रजत जयन्ती बाकी है, मालिकों या मजदूरों की किसी यूनियन से भी मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है फिर भी मैं पत्रकार हूँ । क्या आप मेरे पत्रकार बनने की कहानी सुनिएगा ?

मैं पत्रकार कैसे बना, इसकी कहानी कम रोचक नहीं । यह इस प्रकार प्रगतिशील है कि मास्को वाले भी उस पर गर्व कर सकते हैं । बेकार भोग उसमें से सार ग्रहण कर सकें, इसलिए उसे यहाँ दे रहा हूँ—

यात यह हुई कि बचपन में मैं बेहव घंटान या । घर से स्कूल की कह जाता और दिन-भर गलियों में गिल्सी-हडा उड़ाकर ठीक पार बजे वापस सीट घाता । इम्तिहान के दिनों में बीमार बन जाता और छुट्टियों के दिनों में छुट्टा फिर करता । १७ वर्ष की अवस्था तक सरामा-सरामा घाराम से ७वें दर्जे तक तो पहुँच गया, लेकिन उसको उलाँघने का परमिट साख हनुमान धाम्नीसा पढ़ने और शिबजी पर रोख घाम को दीपक जसाने के बाद भी नहीं मिला । जब एक, दो तीन और लगातार चार साल तक की कड़ी माकेबनी के बाद भी मैट्रिक का मोर्चा सफल होता दियाई नहीं दिया और बहाधय पानन करने की अवधि भी घनै सनै समाप्त होने लगी

तो मैं सफलतापूर्वक मोर्चे से वापस हट आया।

सवाल हुआ कि अब क्या किया जाए? कुछ दिन का समय तो भरवालों ने सेहत सुधारने के लिए सुविधापूर्वक प्रदान कर दिया लेकिन जैसे ही गया-पञ्चीसी समाप्त हुई (पञ्चीस वर्ष की उम्र पूरी हुई) उन्होंने साफ कह दिया कि बेटे अब तुम जानो और तुम्हारा काम। नमाओ-खाओ, मौज करो।

तब मैंने कसकीं से लेकर द्यूधनों तक की तसाश में गली बाजारों के चक्कर लगाने प्रारम्भ कर दिए। जब उस पर कोई रूबी नहीं हुआ तो बजाज से लेकर हसवाई तक की दूकान पर नौकरी के लिए लोगों से सम्पर्कना की। मगर कोई मुझे अधिक सुखिमान बताकर इन्कार कर देता तो कोई कमप्रसन्न कहकर परवाहा दिता देता। कोई कहता कि काम करने की तुम्हारी उम्र निकस गई और कोई कहता कि जाओ फिर से पाठशाला में भरती हो जाओ।

शुरू-शुरू मैं कुछ दिनों तक तो माताजी बोबी की पुसाई, ठोड़ी की छिसाई और हाथ-सर्ब के लिए चुपके-चुपके कुछ पैसे देती रहीं, मगर जब उनके धैर्य ने भी अन्त हो गया और बाजार से परिवार के नाम पर उधार भिसना भी बन्द हो गया तो हमने सोचा कि इस भूखी कुस की नाज-सर्ब में क्या सोगे? और, एक दिन हिम्मत करके हमने पान-बीड़ी का खौमचा लगाना प्रारम्भ कर ही तो दिया।

मेरे इस परम प्रगतिशील कार्य से मेरे परिवार वालों का मस्तक गव से ऊँचा उठना चाहिए था, मगर वह धर्म से नीचे झुक गया। उनकी नाक बढ़ती नहीं तो कम-से-कम स्थिर तो रहनी ही चाहिए थी, मगर उनके कहने से मासूम हुआ कि वह कुछ छोटी होने लगी है। जो भी हो, मुझे यह पेशा छोड़ने के लिए मजबूर किया जाने लगा। पर मैं टस-से-मस नहीं हुआ।

क्यों होता? ६-७ घण्टे की फेरी से न केवल मेरा हाथ-सर्ब ही सीधा होने लगा, बरन् मेरे बापस के कूत्तों की जब मैं हर रोज

पत्रकार
चाहिये



“ कि उन्ही एक दिन एक टूटी-सी रिक्शा के एक छोटे से द्वार की बगल में एक बोर्डिग-बोर्ड दिखाई दिया। निवा बा—पत्रकार चाहिए !” (पृष्ठ १०३)

सिनेमा के लिए भी ऐसे सनकने लगे थे ।

पान-बीड़ी के खामिचे से सबसे बड़ा नाम यह हुआ कि मुझ में भी अब धातम-विश्वास जगने लगा । मैं, जो बर्कों से घातें करते सकुचाता था, अब उनसे बहस करने लगा । मैं जो अब तक मूर्खों के समुदाय का ही एक विशिष्ट सदस्य समझा जाता था, अब समझदारों को भी उपदेश देने लगा । पान-बीड़ी के प्रताप से मेरी पहुँच हांगेवालों से लेकर छोटी बालों तक होगई । स्कून्स के बपरसी से लेकर दरोगाजी तक को मैं सामाज्य करने लगा । जैसे मेरी बीड़ियाँ जनता के हर बग के मुँह लगी थीं, वैसे ही जनता के हर बर्ग की चर्चा मेरे मुँह लगे उठी थी ।

विचारशून्य इस मस्तिष्क में अब भाँति भाँति के तूफान उठने लगे । मैं पानवाड़ी की दूकान से लेकर होटल चलाने तक के स्वप्न बेसने लगा । पर तत्काल ही एक दिन एक बीड़ी-बडल बेचते-बेचते एक घहरी नेता को देखकर मेरे मन में ज्ञान का उदय हुआ । मन में सोचा, दोस्त तो सब कमाते हैं, मुझे तो जन-सेवा का कोई मार्ग प्रपन्नाना चाहिए ! मैंने चुंगी की मेम्बरों से लेकर प्रसेम्बमी की 'एमेलेगीटी' तक की बावत गौर किया । यह भी सोचा कि कांग्रेस में बगल न हो तो सोशलिस्ट पार्टी में ही घुस पड़ूँ । साम बी साम में प्रपनी-परार्ई सेवा के द्वार खुल ही जाएंगे । लेकिन मन कहीं स्थिर नहीं हो पा रहा था ।

कि तमी एक दिन, एक टूटी-सी विल्डिग के छोटे-से द्वार के बगल में एक बिपका मोटिस-बोर्ड दिखाई दिया । लिखा था—'पत्रकार चाहिए । जैसे भगवान् बुद्ध को अशयवट के नीचे एक दिन मुक्ति का रहस्य एकाएक ज्ञात हुआ था, जैसे गाँधीजी के समझ एक रात एकाएक असहयोग का अस्त्र प्रकट होमया था और जैसे सैकड़ों बर्ग के गुलाम भारत में एक दिन आजादी टपक पड़ी थी, ठीक वैसे ही मेरी सफ़लता के बन्ध ताने में आज ठासी लगे ही लगे हैं ।

आज देखा न ताब, प्रपना पान-बीड़ी का पत्मा राह चलते एक

भाई को टिका में एक साँस में बिस्किंग की २७ सीढ़ियाँ सटासट पार कर गया और चपरासी की हूँ-हूँ की परवाह न करता हुआ सीधा डायरेक्टर के सामने जा दन्नाया !

उन्होंने प्रश्न-सूचक सिर ऊपर उठाया !

मैने कहा, 'पत्रकार बनने की तमन्ना है ।'

प्रश्न हुआ 'अब तक क्या कर रहे हो ?'

कहा "केवल ज्ञान-संचय ।'

पूछा, 'क्या मतलब ?'

'यही कि अमता के प्रत्येक बर्म से उसकी समस्याओं की एक-एक कर घूम-घूमकर खानकारी प्राप्त करता रहा हूँ ।'

'पढ़ाई-लिखाई किसमी हुई है ?'

कहा पञ्चीस साल तक सब-कुछ छोड़कर पढ़ता ही रहा हूँ । हाँ डिप्रियों का माह कभी नहीं किया । हिन्दी-अंग्रेजी सिख-पढ़ लेता हूँ उर्दू-फारसी बोस-समझ लेता हूँ पंजाबियों का पढ़ोस है, मरासियों से दोस्ती है ।'

प्रश्न हुआ "बेतन चिन्ता सोगे ?'

तो कहा "मैं इस 'साइन' में बेतन के लिए नहीं आ रहा जो दोगे, से सुँगा ।

हुकम हुआ, 'आओ आज से ही काम करो । दिन-भर घूमो और शाम को सबरें लाकर मुझे दिखाओ ।

असा इस काम में मैं कभी असफल हो सकता था ? सास बहू की सबाई से लेकर तांगा-मोटर-भिन्न-तक के समाचार रंग रंग कर देने लगा और वे बड़े-बड़े धीरे-धीरे से अलबार में बाहर भीतर छपने लगे ।

शुरू-शुरू में सहकारी सम्पादकों के दल मुझ नीसिलिए आज नहीं को देखकर काटने लड़े, मगर स्वस्थ शरीर और मेरे गले में डायरेक्टर का पट्टा देखकर वे गुर्दाकर ही रह गए ! धीरे-धीरे पट्टी बैठ गई ।

घब मैंने तांगा-मोटर-मिक्मोनों को छोड़कर युवक-युवतियों के बैठने-भागने और रहस्य के भण्डाफोनों में दिलचस्पी ली। दस-पाँच मामले ऐसे छापे कि सहर में असमती मच गई, अखबार की मिस्त्री चौगुनी हो गई और मगर का प्रतिष्ठित समाज मुझसे भय साने लगा।

सब मैंने एक ही रीति अपनाई। सिद्धता कि आज अमुक बाजार के एक प्रतिष्ठित सेठ के यहाँ की मरकर सबर हमारे पास आई है। उसका पूरा विवरण कल के अंक में पढ़िएगा। अखबार हाथ में धाते ही सेठ की फूँक सरक जाती। लोगों में चर्चा फैलती सीवा होता और १०० में से ५० मामले दब जाते। इसमें सपासक की भी पत्ती रहती।

धीरे-धीरे मैं सिटी रिपोर्टर से विशेष सम्वाददाता हुआ और फिर विशेष प्रतिनिधि। एक पत्र से दूसरे में गया और दूसरे से तीसरे, चौथे और पाँचवें में। काँग्रेसी अखबार में काँग्रेस के गुण गाता और महासभाई पत्र में पहुँचता तो काँग्रेस को डटकर कोसता। सेठों के अखबारों में जाता तो हड़तालों की निन्दा करता और सोशलिस्टों के अखबारों में मजदूरों को हड़ताल के लिए उकसाता। यही नहीं, एक ही अखबार में एक ही कसम से मैं अग्रसेख में सरकार का समर्थन करता और समाचारों में उसकी कसई सोसता। इन्हीं गुणों के कारण पत्रकार मुझे महाम् मानने लगे। सरकारी अधिकारियों में मेरा सम्मान होने लगा और सेठों की मोटरें मेरे दरवाजे पर खड़ी रहने लगीं। दुनिया सुन गई कि मैं पाग-बीड़ी फरोश हूँ।

अभी कुछ दिन हुए पत्रकारों ने मेरी जयंती मनाई थी। उस अवसर पर जो मैंने भाषण दिया था, उसके कुछ ऐतिहासिक स्वस धापके ज्ञान-बर्दान के लिए यहाँ लिख रहा हूँ—

“पाइयो और बहलो।

“आज की दुनिया में ‘मैस’ का कितना महत्व है यह धाप जानते ही हैं। दुनिया की व्यवस्था, उसकी धामि और अमुदि ‘मैस’ पर ही निर्भर है। इस

बात वेता युग की है। सब बिना रामराज्य परिपक्व के भारत में रामराज्य या धीर विना जनसभ के कोस भीस, किरात क्या बानर तक प्रथम भारतीय सस्कृति का निर्माण कर रहे थे।

हुमा यह कि बूढ़े राजा दशरथ ने अपनी सबसे छोटी रानी के कहने पर रामचन्द्र को १४ वर्ष का बनवास दे दिया। उन दिनों आज का सा प्रजातंत्र नहीं था फिर भी अयोध्या की प्रजा को राजा की यह बात पसन्द नहीं आई। उन दिनों समाजवादी धीर साम्यवादी भी नहीं थे नहीं तो हड़ताल होगई होसी, थाने छूट लिए गए होते धीर राजा के महसों में अवश्य ही आग लगाने की चेष्टा की गई होती। धरमा देने की कसा भी लोगों ने सब नहीं जानी थी। नहीं तो राजमहल के अग्ये अग्ये पर अयोध्या नगर की नारियाँ छागइ होतीं। लेकिन फिर भी प्रजा कलियुग के सवत् २००८ की तरह अकर्मण्य नहीं थी, उसने अविधारी राजा के राज्य को रामचन्द्र के साथ-साथ छोड़ना तय कर लिया। जैसे ही राम का रथ बन की ओर असा सारी अयोध्या उसके पीछे उमड़ पड़ी। बात-की-बात में दशरथ की राजधानी खामी होगई।

रामचन्द्रजी अभी कृपमानीजी की तरह बूढ़े नहीं हुए थे, नहीं तो वह भी प्रजा के असंतोष से पूरा माम उठाते धीर राजधानी के बाहर ही कहीं भौंपड़ी डालकर प्रजा पार्टी की स्थापना कर लेते। आजकल के अक्सरवादी जाहे उन्हें मतिमन्द ही क्यों न कहें, उन्होंने क्या कुछ नहीं किया धीर नदी के तीर पर पहुँचकर स्वयं तो नाव में सवार हुए धीर जनता को संबोधित करते हुए कहा

“अरधोर नाप्यो, मैं तुम्हारे स्नेह से अग्य हुमा। लेकिन राजा बूढ़े हैं। भरत पर पर नहीं हैं। राजधानी सूनी है। तुम सब सौट जाओ। मैं अपधि समाप्त होते ही अथय सौट आऊँगा।

राम धाज के नेताओं की तरह प्रभागे नहीं थे कि जिन्हें जनता की अनुशासनहीनता के लिए 'सैक्चर' देने पड़ते। प्रजा ने उनके उपदेश का मर्म समझ और उनकी आज्ञा का अक्षरशः पालन किया गया। समस्त नर-नारी भयोध्या पुरी को वापस लौट गए।

लेकिन दुर्भाग्य से उस जनता में कुछ ऐसे भी जीव थे जो न मर थे और न मारी। फिर २०वीं शताब्दी में जिस "कामन वेल्थ" का प्रचानक विकास हुआ है, वह भी उनके पास नहीं थी। उन सक्तीरों के फकीरों ने उत्कलन व्यक्त किया कि रामाज्ञा केवल नर और नारियों पर लागू होती है, हम पर नहीं। और वे सब भयोध्या न लौट कर जहाँ-कहाँ-तहाँ जम गए।

चौदह वर्ष बाद जब रावण विजय करके रामचन्द्रजी पुष्पक विमान द्वारा भयोध्या लौटने लगे तो उसी मदी छट-पर उन्हें बहुत से लोग साम-रूमाल हिसते दिखाई दिए। तब के हवाई जहाज कोई धाज की तरह तो थे नहीं कि बिना हवाई स्टेशन उतर ही न सकें। वे जस-जंगल, खेत-खलिहान, पहाड़-भवान जहाँ भी बिना बुधटना के उतर सकते थे। राम ने जाहा और पुष्पक विमान धरती पर आ सगा।

भयोध्या न लौटने वाले इन सत्याग्रहियों की वेपसूपा १४ वर्षों में कुछ भजव ही भय्य हा गई थी। नाइयों के प्रभाव में इनकी दाढ़ियों ने नाभियों की सीमा को पार कर लिया था और बालों की सटाएँ धतुदिक पृथ्वी को घूमने लगी थीं। वस्त्रों के नाम पर सिर्फ कोपीन ही इनके तन पर बची थीं और बन्द मूल फल के सेवन से इनके शरीर सहज ही योगावस्था को प्राप्त कर गए थे।

भगवान राम ने जब इन ऋषि मुनियों को यों बिह्वस देखा तो क्रुणार्द्र हो उठे और प्रणिपात करते हुए बोले—“हे मुनिसत्तमो, पृथ्वी के सभी निशाचरों का नाश होगया जब तुम निर्भय होकर यज्ञ-यागादिक करो, स्वतन्त्र वनों में विचरो, तुम्हें अब जहाँ कोई मय नहीं, और जो कुछ कष्ट तुम्हें हो वह कहो। मैं दाशरथी राम विनय

पूर्वक आपकी आज्ञा का पालन करेंगा ।”

रामचन्द्रजी के मुँह से यह सब निकलते ही वे श्रुति-मुनि बने हुए प्रयोध्यावासी ब्रह्म में सौटने लगे, जटाएँ धीरे धाड़ियाँ नोचने लगे ।

भगवान राम की समझ में कुछ न आया । उन्होंने हनुमानजी को पता लगाने के लिए इशारा किया ।

हनुमानजी का उधर बढ़ना ही था कि उनमें से बीसियों पुकार उठे— ‘इस भुए बन्दर को हमारी तरफ क्यों भेजते हो ? हए हए, महाराज, हमें नहीं पहचानते ? हम तो हुजूर की रियाभाएँ हैं ।’

प्राय के हस्य और ग्रहस्य शृहन्माओं के पूर्वजों की बानी— सुनते ही हनुमानजी पीठ मोड़ कर लड़े होगए । लक्ष्मणजी ने कंधे पर से धनुष उतार कर कोने में रख दिया । सीताजी मुँह में बंजल दवाकर मुन्कराने लगीं । रामचन्द्रजी भीचकते रह गए । कि तभी उनमें सिन्धी हुई जन्न का एक जन बाहर आया और तासियाँ फटकार कर कहने लगा— ‘अए हए, सरकार हमें सूस गए । याद नहीं आता हमारे हुजूर को ? (तासियाँ) हमारे राजा, जब आप यहाँ से भाव में बैठने लगे थे तो सरकार को बड़ी जन्न हो यही तो फर्माया था कि सब नर-नारी वापस प्रयोध्या चले जाएँ ? सनिक सोचिण तो सही, यह हुजूर हम पर कब साद्र होता था ? हमने सोचा, प्रयोध्या जाएँ हमारे दुश्मन ! हम तो सरकार यहीं बस गए ! और क्या हुजूर !

फिर रुझासा-सा ह।कर बोला—“सरकार, कुछ ही देस लीजिए न कि आपकी प्यारी रियाया की क्या दुर्वेसा होगई है ?”

राम आश्चर्य भगवान राम ही थे । अपने भक्तों की इस दुर्वेसा पर द्रबित हो गए । रुढ़ कठ से उन्होंने कहा—“प्यारे मगर निवसियो, मैं तुम्हारी भक्ति पर, तुम्हारी आज्ञानुवर्तिता पर, तुम्हारे त्याग और साहस पर बहुत ही प्रसन्न हुपा हूँ । सकोच तबकर कहा—“तुम्हें क्या चाहिए ? जो तुम्हें बने, वर माँग लो ।”

भगवान् राम के इस कथन पर अचरित्यत फलता में हस्यस्य पल गइ । सोचने लगे क्या माँया थाय ? किसीने कहा जमीन माँगी



“जापो तुम स्वर्ग्य बन्धीबन्धार होना ।” (पृष्ठ ११०)

बाय । लेकिन दूसरे ने प्रतिवाद किया—बिना संताम के जमीन को कौन भोगेगा ? किसीने सुझाया—हाथी-घोड़े मांगे जाएँ । लेकिन कौम के बड़े-बड़ों ने बखल दिया कि हाथी-घोड़ों पर चढ़े फिरोगे तो रोखी कैसे बसेगी ? किसीने कहा—घन-दौलत मांगी जाय । मगर फौरन ही विचार उठा कि विषय ही सही जब प्रकृति ने हमें मृपि मुनियों का बाना पहना दिया है ता घन-दौलत मांगकर इसकी हेठी तो नहीं ही करानी चाहिए ।

घन में जाति के मुखिया ने कहा—“मैं बारी जाऊँ सरकार ! जब आप आगए तो हमें किस चीज की कमी है ? भए हुए, हमें सब-कुछ मिल गया, हुबूर ! जाम कसम, जब कुछ नहीं चाहिए ।

रामचन्द्रजी बोले—“देखो रघुपत्नियों के बचन की धाम तुम जानते ही हो । जो दे दिया सो दे दिया । जब तो तुम्हें कुछ-न-कुछ मांगना ही पड़ेगा ।’

कौम के नेता ने कहा—“जब जब सरकार नहीं मानते, तो हुबूर की जो समझ में आए वह दे जामिए न ?”

धारी कौम ने इसका समर्पन किया ।

जब राजा राम के असमजस में पढ़ने की धारी थी कि इन्हें क्या दिया जाय ? उन्होंने लक्ष्मणजी से पूछा । सुशील और विभीषण से सलाह ली । बड़े जामबत को भी बुलाया । मगर कोई फंसता एकमत से नहीं हो सका ।

भगवान कुछ क्षण के लिए मौन होगए । उन्होंने थोड़ी देर को धाँखें मीच सीं धीर सृष्टि के सूत भबिष्यत् एवं वर्तमान पर अपने घन्ठबँसु बौझाने लगे ।

सहसा उन्होंने कुछ निदचय कर लिया और बोले—“हे तपस्विभ्यो, कमिपुत्र में ईसा की बीसवीं सताब्दी के २१वें वर्ष में इस भार्यावर्त में पहले धाम बुनाय होंगे । हार-जीत का फंसता तुम्हारे कर्मों पर है, जापो तुम उनमें स्वतन्त्र सम्मीक्षवार होना ।

×

×

×

तो माइयो और बहमो, शास्त्र के स्वतन्त्र उम्मीदवार कोई साधारण पुण्य नहीं भगवान राम के धार्मीर्वाद-प्राप्त विशिष्ट जन हैं । अपनी प्राचीन परम्परा के अनुसार न ये क्रांतिवादी हैं, न प्रजासमाजवादी । न सखी हैं, न परिपक्वी । न भ्रम्वेदकरी हैं, न समाजवादी, न साम्यवादी । न इनका कोई धर्म है न आति । न इनके कोई बिभार हैं न संगठन । इनके धारासमाधों में जाने से और कोई लाभ होगा या नहीं यह तो ठीक से नहीं कहा जा सकता, मगर इतना निश्चित है कि धारासमाधों और ससद् में बात-बात पर ही नहीं वे बात पर भी सामियाँ बारबार प्रवश्य बजा करेंगी ।

